CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीतशास्त्र
भाग 1

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

-ग्रन्थालय
रौंदी, वाराणसी-५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत शास्त्र

१३/५९
...माय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

भाग १

(यू० पी० बोर्ड के हाईस्कूल और प्रयाग संगीत समिति के
जूनियर डिप्लोमा तथा अन्य समानांतर
परीक्षाओं के लिये ।)

लेखक
महेश नारायण सक्सेना
बी० एससी०, साहित्य रत्न, संगीत प्रभाकर, संगीत विशारद,
डाइरेक्टर—प्रयाग संगीत समिति

१९४९
गणेश पब्लिशिंग हाउस
अहियापुर, इलाहाबाद ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक :—
महावीर प्रसाद खरे,
गणेश पब्लिशिंग हाउस,
गणेश भवन, अहियापुर, इलाहाबाद ।

"सर्वाधिकार सुरक्षित"

प्रथम संस्करण २०००
मूल्य १)

मुद्रक :—
जगन्नाथ प्रसाद मालवीय,
सेन्ट्रल प्रिन्टिङ्ग प्रेस,
५० खुशहाल पर्वत,
इलाहाबाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उ. क्रमाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

—: प्राक्कथन :—

संगीत शास्त्र की योग्य पुस्तकों का अभाव बहुत दिनों से रहा है। जब से स्कूलों, कालिजों और विश्वविद्यालयों में संगीत-कला को स्थान प्राप्त हुआ है, तब से संगीत-शास्त्र की ओर भी कुछ लोगों का ध्यान गया है। वास्तव में किसी भी कला का विकास और उसका सम्यक अध्ययन पर्याप्त अंश में उसके शास्त्रीय पृष्ठभूमि के सहारे ह: हो सकता है। यवन काल में संगीत की कलात्मक उन्नति तो बहुत हुई परन्तु दरबारों में संगीत-शास्त्र के प्रति उपेक्षा का भाव होने के कारण कला और शास्त्र एक दूसरे से पृथक हो गये। इसके अनेक परिणाम हुये जिनमें से एक परिणाम यह भी है कि शास्त्र का अंकुश हटने से संगीत कला की अभिव्यञ्जन प्रणालियों में अत्यधिक स्वच्छंदता अथवा विश्रृङ्खलता आ गई। स्वर्गीय पं० भातखंडे जी ने उत्तर-भारत के हिन्दुस्तानी संगीत के शास्त्र को फिर से सुव्यवस्थित किया और उसे हिन्दुस्तानी संगीत के वर्तमान स्वरूप के अनुकूल बनाया।

इधर कुछ वर्षों में संगीत शास्त्र की कतिपय पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और उनसे लाभ भी हुआ है। किन्तु जब हम अन्य विद्याओं अथवा कलाओं की पाठ्य-पुस्तकों से संगीत-शास्त्र की वर्तमान पुस्तकों का मिलान करते हैं तो हमें अत्यन्त खेद होता है। कारण मुख्य यह है कि संगीत-शास्त्र की उपलब्ध पुस्तकें एक तो भाषा और भाव-अभिव्यञ्जन की दृष्टि से बहुत त्रुटिपूर्ण हैं और दूसरे वे वैज्ञानिक अथवा मनोवैज्ञानिक दृष्टि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोण के आधार पर नहीं लिखी गई हैं। यह कहने की आव-श्यकता नहीं कि किसी भी पाठ्य-पुस्तक में सुन्दर तथा सरल भाषा और भावों का सफल स्पष्टीकरण अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही साथ उसमें आदि से अंत तक विषयों का प्रतिपादन एक क्रमिक विकास के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिये।

इन बातों का ध्यान रखकर ही यह संगीत-शास्त्र की पुस्तक संगीत जगत् के विद्यार्थियों एवं अध्यापकों की सेवा के लिये प्रस्तुत की जा रही है। यह 'सङ्गीत-शास्त्र'' का प्रथम भाग है जिसमें यू० पी० बोर्ड के हाई स्कूल तथा प्रयाग संगीत समिति के जूनियर डिप्लोमा की परीक्षाओं का सम्पूर्ण शास्त्र विस्तार सहित दिया गया है। इन परीक्षाओं के अतिरिक्त इनके समकक्ष अन्य सभी परीक्षाओं के विद्यार्थी केवल इसी पुस्तक पर अवलम्बित होकर संगीत-शास्त्र का समुचित अध्य-यन कर सकते हैं। "सङ्गीत-शास्त्र" के द्वितीय भाग में यू० पी० बोर्ड के इन्टरमीजियेट और प्रयाग संगीत समिति के सीनियर डिप्लोमा की परीक्षाओं तथा अन्य समकक्ष परीक्षाओं का पूर्ण शास्त्र दिया गया है। इसी प्रकार "संगीत-शास्त्र" का तृतीय भाग किसी भी विश्वविद्यालय के बी० ए० और प्रयाग संगीत समिति की प्रभाकर-परीक्षाओं तथा अन्य सभी स्थानों की समकक्ष-परीक्षाओं के लिए लिखा गया है। तीनों भाग एक दूसरे से क्रमिक सम्बन्ध रखते हैं और ऊंची कक्षाओं के विद्यार्थी भी प्रथम और द्वितीय भागों से यथेष्ठ लाभ उठा येंगे। इन पुस्तकों के सहारे संगीत-शिक्षक सरलता से और एक वैज्ञानिक ढंग से संगीत-अध्यापन का कार्य कर सकेंगे।

इस पुस्तक की कुछ विशेषतायें ये हैं :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१) संगीत का प्राण नाद है। अतः नाद की उत्पत्ति तथा आंदोलनों के सम्बन्ध में कुछ मूल विज्ञान-सम्बन्धी बातों का जानना प्रत्येक संगीत के विद्यार्थी के लिये आवश्यक है।

इस विषय पर आवश्यक प्रकाश डाला गया है।

(२) भाषा शुद्ध और भावों की अभिव्यक्ति स्पष्ट रखने का भरसक प्रयत्न किया गया है। भाषा ऐसी है जिसे ७ वीं से १० वीं कक्षाओं के विद्यार्थी समझ सकें। (३) सभी पारिभाषिक शब्दों की पूर्ण, स्पष्ट और वैज्ञानिक परिभाषायें तथा व्याख्यायें दी गई हैं। श्रुति और नाद में सूक्ष्म भेद, श्रुति और स्वर का सम्बन्ध, लय, मात्रा और ताल का परस्पर सम्बन्ध आदि विषयों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। (४) विविध लयकारियों का स्पष्ट परिचय अभी तक किसी भी पुस्तक में नहीं दिया गया है। इस पुस्तक में उनका पूर्ण स्पष्टीकरण मिलेगा। (५) स्वर और राग सम्बन्धी सभी शास्त्र प्रथम अध्याय में, लय और ताल सम्बन्धी सभी शास्त्र द्वितीय अध्याय में और गीत तथा गायन सम्बन्धी शास्त्र तृतीय अध्याय में दिया गया है। यही अध्याय-क्रम संगीत-शास्त्र के अन्य भागों में भी रक्खा गया है। (६) संगीत-शास्त्र के कुछ प्राचीन लक्षणों पर आधुनिक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है। उदाहरणार्थ सभी आधुनिक ग्रंथकार "न्यास" का अर्थ "गीत अथवा आलाप की अन्तिम समाप्ति का स्वर" मानते हैं परन्तु आज उस शब्द का अर्थ भिन्न हो गया है। राग के जिन-जिन स्वरों पर स्वर-समुदाय समाप्त होते हैं अथवा राग के जो भी विश्रांति स्थान हैं, उन सभी को न्यास के स्वर कहते हैं। इसी प्रकार रागों के आधुनिक दस लक्षणों का भी स्पष्टीकरण किया गया है। (७) संगीत-शास्त्र के द्वितीय वा तृतीय भागों में भी अनेक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आवश्यक, सुन्दर और महत्वपूर्ण विषयों का प्रतिपादन है जिन्हें अभी तक संगीत के शास्त्र में स्थान नहीं मिला है।

लेखक को पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक द्वारा संगीत के विद्यार्थियों में संगीत-शास्त्र के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होगी और उसके अध्ययन में एक सूक्ष्म दृष्टि डालने में उन्हें सहायता मिलेगी।

१४, कास्थवेट रोड, इलाहाबाद।
१६ नवम्बर १९४६

लेखक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरलिपि चिन्ह :—

भातखंडे पद्धति :—

१— एक मात्रा के स्वर.........सा रे ग म

२— आधी-आधी मात्रा के दो स्वर .....सा रे

३— चौथाई-चौथाई मात्रा के चार स्वर........सा रे ग म

४— इसी प्रकार एक कोष्ठ के भीतर के सभी स्वर समान कालांश में एक मात्रा के भीतर गाये बजाये जाते हैं।

५— अर्द्धविराम (,) द्वारा एक मात्रा के दो बराबर भाग आधी आधी मात्रा के बनाये जाते हैं और दोनों भागों में लिखे स्वरों में आधी मात्रा बराबर बराबर बाँटी जाती है। जैसे सा, रेग में सा = ½ मात्रा. रे = ग = ¼ मात्रा।

६—स्वरों के आगे लेटी लाइन लगा कर स्वरों का उच्चारण लम्बा किया जाता है जैसे सा — — में सा पर कुल तीन मात्राएँ होंगी। इसी प्रकार सा, – रे में सा पर ½ + ¼ = ¾ मात्रा होंगी और यहाँ रे पर ¼ मात्रा होगी।

७—गीत के अक्षरों को अवग्रह (ऽ) द्वारा लम्बा करते हैं, जैसे रा ऽ ऽ म् में रा को दो मात्रा लम्बा करके उस पर कुल तीन मात्राएँ की गईं।

८— सम का चिह्न ....×

९— खाली का चिह्न ०

१०— ताली के स्थान पर ताली की संख्यायें जैसे २, ३, ४, आदि।

११— ताल के प्रत्येक विभाग के अन्त में खड़ी लकीर जैसे, |

१२— शुद्ध स्वर ... . ग, प, ध

१३— कोमल स्वर, ... ग, ध

१४— तीव्र स्वर ... ... म

१५— तार सप्तक के स्वरों पर बिन्दु सां, गं

१६— मन्द्र सप्तक के स्वर के नीचे बिन्दु नी, ध

१७— मध्य सप्तक के स्वर नी ध

१८— मींड ....… प ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१९— कण .... ^म^ग , सां^नी

२०— कोष्ठ के भीतर स्वर (प) = धपमप

(सां) = रें सां नी सां

विष्णुदिगंबर पद्धति :—

१ — दो मात्रा का चिह्न ... ... ⌣

२— एक मात्रा ... ... —

३— आधी मात्रा ०

४—चौथाई मात्रा ... ...

५— ⅛ मात्रा ... ...

६— ⅓ मात्रा ... ...~ या ⅓

७— ⅙ मात्रा ... ... या ⅙

८— स्वरों को लम्बा करना ... प ऽ ऽ म

९— अक्षरों को लम्बा करना ... रा . . म

१०— विश्रांति चिन्ह .... ,

११—इस पद्धति में जितनी मात्रायें अथवा मात्रांश किसी स्वर या विश्रांति या अवग्रह पर देना होता है, उसका चिन्ह उसके नीचे लगा दिया जाता है।

१२—प्रत्येक आवर्त के अन्त में खड़ी लाइन, ।

१३—स्थायीके अंतमें दो खड़ी लाइनें, ॥

१४—पूरे गीतके अंतमें तीन लाइनें, ।।।

१५—कोमल ... ... ग॒ ध॒

१६—तीव्र ... ... म्र या म्

१७—शुद्ध .... ग

१८—तार .... गं

१९—मंद्र .... गं

२०—मध्य .... ग

२१—सम १

२२— खाली ... ... +

२३—तालीके स्थान पर मात्राकी संख्या।

२४—कण ^ध^प

२५—मींड प͡ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

	पृष्ठ संख्या।
(१) संगीत, दो पद्धतियाँ	१
(२) ध्वनि, ध्वनि की उत्पत्ति	२
(३) आंदोलन,	२,३
(४) नाद	४,५
(५) स्थान	५
(६) श्रुति	५,६
(७) स्वर	६,७
(८) श्रुति-स्वर-विभाजन	७-६
(९) स्वरों के प्रकार	१०
(१०) सप्तक	११
(११) थाट	११,१२
(१२) वर्ण	१२,१३
(१३) अलंकार	१३
(१४) तान-आलाप	१३ १४
(१५) राग	१४
(१६) आधुनिक राग लक्षण	१५-२३
(१७) आरोह, अवरोह	१५
(१८) वर्ज्य स्वर	१५
(१९) राग की जाति	१६
(२०) वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी	१७,१८
(२१) पकड़	१८,१९
(२२) न्यास, अपन्यास	१९,२०
(२३) पूर्वांग-उत्तरांग, पूर्वराग-उत्तर राग	२०,२१
(२४) राग का समय	२१,२२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२५) संधि प्रकाश राग — २२
(२६) आविर्भाव-तिरोभाव — २२ २३
(२७) राग का रस — २३
(२८) प्राचीन राग लक्षण — २४
(२९) वक्र, कण, मींड — २४,२५
(३०) आश्रय राग — २५,२६
(३१) शुद्ध, छायालग, संकीर्ण राग — २६

द्वितीय अध्याय

(१) लय — २७,२८
(२) मात्रा — २८
(३) ताल — २९,३०
(४) लयकारियाँ — ३१,३२
(५) तालों का वर्णन — ३२-३८
(६) तालों की दुगुन आदि लिखना — ३८-४०

तृतीय अध्याय

(१) गीत, गांधर्व—गान, निबद्ध-अनिबद्धगान—४१,४२
(२) रागालाप, रूपकालाप, आलप्ति, स्वस्थान—४१,४२
(३) आधुनिक निबद्धगान, — ४२ ४३
(४) धातु, स्थायी, अंतरा, संचारी, आभोग.....४२,४३
(५) ध्रुपद — ४३-४५
(६) धमार — ४५,४६
(७) ख्याल — ४६-५०
(८) बढ़त, बहलावा, बराबरी की तान, फिरत; बोलतान, गमक—तान, शुद्ध—कूट—मिश्र तानें — ४८-५०
(९) टप्पा — ५०,५१
(१०) ठुमरी — ५१,५२
(११) चतुरंग, तराना, लक्षणगीत — ५३,५४
(१२) स्वरमालिका, गजल, भजन और गीत — ५५-५६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत शास्त्र

भाग १

प्रथम अध्याय

संगीत

संगीत वह आकर्षक ललित कला है जिसके द्वारा संगीतज्ञ अपने हृदय के सूक्ष्म भावों को स्वर और लय की सहायता से सुन्दर रूप में प्रकट करता है। संगीत में तीन कलाओं का समावेश है—गायन, वादन और नृत्य। इनमें मुख्य है—गायन कला और इसीलिए इसका नाम संगीत पड़ा है।

भारतवर्ष में संगीत की मुख्य दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं। एक उत्तर हिंदुस्तानी संगीत पद्धति जो बम्बई प्रान्त और उत्तर भारत में प्रचलित है और दूसरी दक्षिण-अथवा कर्नाटक पद्धति जो दक्षिण भारत के अन्य प्रान्तों में अर्थात् मद्रास, मैसूर, कर्नाटक आदि में प्रचलित है। इन दोनों पद्धतियों का मूल आधार तो एक ही है किन्तु यवन काल में फ़ारस और अरब के संगीतशास्त्र के प्रभाव से उत्तर भारतीय संगीत कला में बहुत अंतर पड़ गया जिससे वह कर्नाटक संगीतकला से कुछ दूर जा पड़ी। दोनों में बारह स्वरों और बाईस श्रुतियों का व्यवहार तथा मुख्यतः थाट-राग वर्गीकरण मान्य है। किन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों के स्वर नाम, राग-नामों और तालों, तथा गायन प्रणाली में पर्याप्त अन्तर है।

ध्वनि

जो कुछ भी हम कान से सुन सकते हैं, वही ध्वनि है। संपूर्ण संगीतकला ध्वनि से ही निर्मित हुई है। ध्वनि की उत्पत्ति कंपन से होती है। कंपन किसी वस्तु के हिलने को कहते हैं। मनुष्य के कंठ के भीतर जो स्वर-तंत्रियाँ हैं उनके कंपन से ही ध्वनि निकलती है। इसी प्रकार किसी तन्त्रवाद्य में उसके तारों के कंपन से ध्वनि उत्पन्न होती है। तबला, पखावज आदि घन वाद्यों में चमड़े के कंपन से और बाँसुरी आदि सुषिर वाद्यों में हवा के कंपन से ध्वनि उत्पन्न होती है।

आंदोलन

जब हम सितार अथवा तानपूरे के खिंचे हुए तार को बजाते अथवा छेड़ते हैं, तो तार ऊपर-नीचे कंपन करता है। पहले वह अपने स्थान से एक ओर कुछ दूर तक जाता है; फिर वहाँ से लौट कर दूसरी ओर भी उतनी ही दूर तक चलता चला जाता है और अन्त में वह फिर लौट कर अपने पूर्व स्थान तक आ जाता है। परन्तु यहाँ वह रुकता नहीं वरन् इसी प्रकार का कंपन जारी रहता है। चित्र में अ-ब एक तार है जिसे छेड़ने पर उसका मध्य भाग क एक ओर ऊपर ख तक खिंच कर जाता है और फिर लौट कर दूसरी ओर उतनी ही दूर नीचे ग तक चला जाता है और अन्त में फिर लौट कर पूर्व स्थान क तक आ जाता है, इतने कंपन को एक पूरा आंदोलन कहते हैं। अर्थात्, जब कंपन करने वाली वस्तु अपने स्थान से पहले एक ओर कुछ दूरी तक जाकर लौटे और दूसरी ओर भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उतनी ही दूरी तक जाय और फिर लौट कर अपने प्रारम्भिक स्थान पर आ जाए तो उसके इतने कंपन को एक पूरा आन्दोलन कहेंगे।

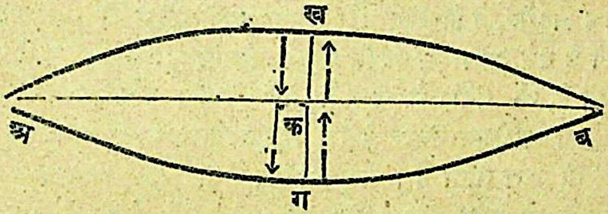

चित्र के अनुसार तार के मध्य का कण क पहले ख तक फिर लौट कर क से होता हुआ ग तक और फिर लौट कर क तक जाता है (क→ख→ग→क)। इसी प्रकार एक आंदोलन के तुरन्त बाद दूसरा आंदोलन आरम्भ हो जाता है और दूसरे के बाद तीसरा, तीसरे के बाद चौथा—इस प्रकार आंदोलन जारी रहते हैं। जैसे-जैसे शक्ति अथवा जोर कम होता जाता है क ख की चौड़ाई कम होती जाती है और थोड़ी देर में तार का कंपन बंद हो जाता है और तभी ध्वनि भी नहीं सुनाई पड़ती। ख से ग तक की दूरी को आन्दोलन की चौड़ाई कहते हैं और एक सेकण्ड में तार जितने कुल आंदोलन करता है, उस संख्या को उस ध्वनि की आंदोलन-संख्या कहते हैं।

जब प्रत्येक आंदोलन एक ही समय में होता है अर्थात् जब प्रत्येक सेकण्ड में आंदोलनों की संख्या समान रहती है, तब आंदोलनों को नियमित आंदोलन कहते हैं और इसके विपरीत यदि प्रत्येक सेकण्ड में आंदोलनों की संख्या बदलती जाय तो उन्हें अनियमित आंदोलन कहेंगे। स्थिर आंदोलन उन्हें कहते हैं जो कुछ देर तक जारी रहते हैं और अस्थिर आंदोलन आरम्भ होते ही एकाएक रुक जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाद

नियमित और स्थिर आंदोलनों द्वारा उत्पन्न ध्वनि, जो इसीलिये मधुर तथा संगीतोपयोगी होती है, नाद कहलाती है। इसके विपरीत, अनियमित और अस्थिर आंदोलनों से जो ध्वनि निकलती है उसे साधारण ध्वनि अथवा कोलाहल, शोरगुल आदि कह सकते हैं, जो संगीत के काम में नहीं आती। प्रत्येक नाद की एक निश्चित आंदोलन संख्या होती है और आंदोलन संख्या के बदलने से नाद भी बदल जाता है। नाद के विषय में तीन बातें जानना आवश्यक है, जो उसकी तीन विशेषताएँ कही जाती हैं :—(१) एक तो नाद की ऊँचाई-निचाई, जो नाद की आंदोलन संख्या पर निर्भर है। जितनी अधिक आंदोलन संख्या होगी, उतना ही नाद ऊँचा कहलायेगा। दुगनी आंदोलन संख्या वाला नाद दुगना ऊँचा नाद भी कहलाएगा। (२) दूसरी विशेषता, नाद का छोटा-बड़ापन है, जो आंदोलनों की चौड़ाई पर निर्भर है। यदि हम तानपूरे के तार को अधिक जोर से छेड़ेंगे तो वह दोनों ओर दूर तक कंपन करता हुआ जायगा अर्थात् आंदोलन की चौड़ाई अधिक हो जायगी और वह नाद बड़ा नाद कहा जाएगा। जब तार धीरे से छेड़ा जायगा, तब चौड़ाई कम होगी और वह नाद, छोटा नाद कहा जाएगा। बड़ा नाद दूर तक और अधिक स्पष्ट सुनाई देगा और छोटा नाद कम दूर तक और धीमा सुनाई देगा। (३) नाद की तीसरी विशेषता उसकी जाति अथवा गुण है, जो उस नाद के ही साथ स्वयं उत्पन्न होने वाले अन्य सहायक नादों की संख्या, क्रम और जोर पर निर्भर है। अधिकतर कोई भी नाद अकेला नहीं निकलता ; उसके साथ स्वयं ही कुछ अन्य ऊँचे नाद भी उत्पन्न होते हैं जिन्हें अभ्यस्त कान सुन सकते हैं—इन्हीं नादों को उस मूल नाद के सहायक नाद कहते हैं। तानपूरे के ब्रिज पर तार के नीचे धागा लगाने से अधिक स्पष्ट रूप से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुत से सहायक नाद उत्पन्न होने लगते हैं और इसीलिये झनकार पैदा हो जाती है। सभी वाद्यों में इन सहायक नादों की संख्या, क्रम आदि में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य होता है, इसीलिए उन सबके नादों की जाति भिन्न-भिन्न होती है, तभी हम आँख बन्द करके केवल सुनते ही बता देते हैं कि अमुक नाद अमुक वाद्य का है। यही नाद की जाति की विशेषता है।

स्थान

किसी एक नाद से लेकर उसके दुगने ऊँचे नाद तक के क्षेत्र को एक स्थान कहते हैं जिसका शरीर के उच्चारण अवयवों से घनिष्ट संबंध है। साधारणतया, शरीर के तीन अवयव, हृदय, कंठ और मस्तक ही उच्चारण के स्थान माने गए हैं और इन्हीं के संबंध से स्थान के तीन भेद कहे गए हैं—मंद्र स्थान, मध्य स्थान और तार स्थान। मंद्र स्थान के नादों के उच्चारण में हृदय पर जोर पड़ता है, मध्य स्थान के नादों के उच्चारण में कंठ पर जोर पड़ता है और तार स्थान में मस्तक पर जोर पड़ता है। संगीत-क्षेत्र में स्थान शब्द का प्रयोग करते समय उसकी सीमाएँ निर्धारित कर दी गई हैं और वे सीमाएँ यही हैं कि प्रत्येक स्थान का क्षेत्र किसी एक नाद से लेकर उसके ठीक दुगने ऊँचे नाद तक होगा और साथ ही साथ जहाँ मंद्र स्थान समाप्त होगा वहाँ से मध्य स्थान प्रारंभ होगा और जहाँ पर मध्य स्थान समाप्त होगा, वहाँ से तार स्थान प्रारंभ होगा। मंद्र से दुगना ऊँचा मध्य और मध्य से दुगना ऊँचा तार स्थान होता है।

श्रुति

एक स्थान के भीतर एक दूसरे से ऊँचे असंख्य नाद हो सकते हैं किन्तु वे एक दूसरे के इतने निकट होते हैं कि उन्हें एक दूसरे से भिन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुनना या पहिचानना तथा गाना असंभव हो जाता है क्योंकि कान तथा गले की भी मर्यादा होती है। अतः जब विद्वानों ने यह पता चलाने की चेष्टा की कि एक स्थान में अधिक से अधिक कितने नाद माने जायँ कि जिससे कि उनका आपस का अन्तर हम पहिचान सकें और कंठ द्वारा उन्हें एक दूसरे से पृथक् गा भी सकें, तो उन्हें पता चला कि ऐसे नादों की संख्या बाईस ही मानी जा सकती है। अभिप्राय यह है कि एक स्थान में यदि २२ से अधिक नाद हम चुनेंगे, तो वे एक दूसरे के इतने अधिक निकट आ जाएँगे कि उन्हें हम स्पष्ट रूप से एक दूसरे से पृथक् न तो सुन कर पहिचान पाएँगे और न उन्हें गा ही सकेंगे। अतः एक स्थान के भीतर अधिक से अधिक २२ नाद माने गए जिन्हें श्रुतियाँ कहा गया।

एक स्थान के अंतर्गत असंख्य नादों में से चुने गए वे अधिक से अधिक बाईस नाद जो एक दूसरे से पृथक् स्पष्ट रूप से सुनकर पहिचाने और गाए जा सकते हैं, उन्हें श्रुतियाँ कहते हैं। नाद और श्रुति में यही भेद है। सभी श्रुतियाँ, नाद हैं। उनमें विशेषता है एक दूसरे से पृथक् पहिचाने वा गाए जा सकने की। इसी से साधारणतया श्रुति उस नाद को कहते हैं जो स्पष्ट रूप से सुनी वा पहिचानी जा सके। सभी नाद, श्रुतियाँ नहीं है क्योंकि असंख्य नादों में से ही संगीत के व्यवहार के लिए अधिक से अधिक २२ नाद चुने गए हैं जिन्हें श्रुतियाँ कहते हैं। अतः संगीत के क्षेत्र में हम अधिकतर श्रुति शब्द का ही प्रयोग करेंगे।

स्वर

एक स्थान की बाईस श्रुतियों के प्रयोग की क्षमता तो बहुत अभ्यास के उपरांत ही आ सकती है। इसलिए गायन-वादन में व्यवहार की सरलता के लिए उन २२ श्रुतियों में से भी कुछ दूर-दूर की श्रुतियों को चुन लिया गया। ऐसी श्रुतियाँ पहले मुख्य सात चुीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गईं । स्थान की बाईस श्रतियों में से जो मुख्य सात श्रुतियाँ संगीत में व्यवहार की सरलता के लिए चुनी गई हैं, उन्हें मुख्य स्वर अथवा शुद्ध स्वर कहते हैं । इन्हीं सात स्वरों को आधार मान कर संगीत कला का विकास हुआ है । इन स्वरों के नाम ये हैं:—षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद जिनके संक्षिप्त सांकेतिक नाम ये रक्खे गए हैं:—सा, रे, ग, म, प, ध और न

श्रुति-स्वर विभाजन

प्राचीन पंडितों ने ४थी श्रुति पर षड्ज, ७वीं श्रुति पर ऋषभ, ९वीं पर गांधार, १३वीं पर मध्यम, १७वीं पर पंचम, २०वीं पर धैवत और २२वीं पर निषाद स्वरों को रक्खा और अन्य श्रुतियों का विभाजन भी इन्हीं सात स्वरों में करते हुए प्रथम चारों श्रुतियाँ षड्ज स्वर की मान लीं, उनके बाद की तीन श्रुतियाँ अर्थात् ५वीं ६ठी ७वीं श्रुतियाँ ऋषभ स्वर की मान लीं, ८वीं और ९वीं श्रुतियाँ गांधार की, १०वीं, ११वीं, १२वीं और १३वीं श्रुतियाँ मध्यम की, १४वीं, १५वीं, १६वीं और १७वीं श्रुतियाँ पंचम की, १८वीं, १९वीं और २०वीं श्रुतियाँ धैवत की तथा २१वीं और २२वीं श्रुतियाँ निषाद की मान लीं जैसा कि निम्नांकित चित्र में स्पष्ट किया गया है:—

सा रे ग म प ध नि
↑ ↑ ↑ ↑ ↑ ↑ ↑
१ २ ३ ४ ‿ ५ ६ ७ ‿ ८ ९ ‿ १० ११ १२ १३ ‿ १४ १५ १६ १७ ‿ १८ १९ २० ‿ २१ २२
षड्ज ऋषभ गांधार मध्यम पंचम धैवत निषाद

और प्रत्येक स्वर की अन्तिम श्रुति पर उसकी शुद्ध अवस्था मानी गई पहली चार श्रुतियाँ षड्ज की हैं अतः उसकी अन्तिम श्रुति, चौथी पर शुद्ध षड्ज स्वर माना गया, ५वीं, ६ठी, ७वीं श्रुतियों में से अन्तिम ७वीं पर शुद्ध ऋषभ रक्खा गया, इत्यादि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संक्षेप में प्राचीन और मध्यकालीन संगीत विद्वानों ने श्रुति-स्वर विभाजन का आधार यह माना कि सा, म, प की ४-४ श्रुतियाँ, रे, ध की ३-३ श्रुतियाँ और ग, नी की २-२ श्रुतियाँ हैं और प्रत्येक स्वर की शुद्ध अवस्था उसकी अन्तिम श्रुति पर स्वीकार की।

आधुनिक काल में श्रुति-स्वर विभाजन की प्रणाली कुछ भिन्न हो गई है क्योंकि आज का शुद्ध स्वरसप्तक प्राचीन अथवा मध्यकालीन स्वरसप्तक से भिन्न हो गया। आज का शुद्ध सप्तक बिलावल है जिसमें ऋषभ और गांधार एक दूसरे से काफ़ी दूर हैं जब कि प्राचीन अथवा मध्यकालीन स्वरसप्तक ऋषभ और गांधार के बीच केवल २ श्रुतियों का अन्तर रखता था जिसके कारण आज के संगीतज्ञों को वह प्राचीन अथवा मध्यकालीन गांधार, कोमल प्रतीत हुआ। अतः आधुनिक स्वर सप्तक में रे और ग के बीच में ३ श्रुतियाँ और इसी प्रकार ध और नी के बीच ३ श्रुतियाँ करने के लिए श्रुति-स्वर विभाजन का ढंग बदल दिया गया। आज भी सा, म, प की ४-४ श्रुतियाँ, रे, ध की ३-३ श्रुतियाँ और ग, नी की २-२ श्रुतियाँ मानी जाती हैं परन्तु अन्तर यह है कि अब शुद्ध स्वरों को उनकी अन्तिम श्रुतियों पर स्थापित न कर के, उनकी प्रथम श्रुतियों पर स्थापित किया जाता है। इस प्रकार शुद्ध षड्ज ४थी पर नहीं वरन् १ली श्रुति पर हो गया, ऋषभ ५वीं पर, गांधार ८वीं पर, मध्यम १०वीं पर, पंचम १४ वीं पर, धैवत १८ वीं पर और निषाद २१ वीं पर रक्खा गया। इस शुद्ध स्वर सप्तक में रे और ग तथा ध और नी एक दूसरे से दूर हो गए क्योंकि उनमें ३-३ श्रुतियों का अन्तर पड़ गया जो प्राचीन स्वर सप्तक में २-२ श्रुतियों का था। इसीलिए प्राचीन वा मध्यकालीन शुद्ध सप्तक आज के काफ़ी थाट के सदृश माना गया है।

नीचे दिये गये श्रुति-स्वर विभाजन के चित्र से प्राचीन और अर्वाचीन प्रणालियों का भेद स्पष्ट हो जायगा:—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रुति-स्वर विभाजन	श्रुति नाम	प्राचीन वा मध्य-कालीन शुद्ध स्वर स्थापना	आधुनिक शुद्ध स्वर स्थापना
षड्ज की ४ श्रुतियाँ	१ तीव्रा		षड्ज सा
	२ कुमुद्वती		
	३ मंदा		
	४ छंदोवती	षड्ज सा	
ऋषभ, ३	५ दयावती		ऋषभ रे
	६ रंजनी		
	७ रक्तिका	ऋषभ रे	
गांधार, २	८ रौद्री		गांधार ग
	९ क्रोधी	गांधार ग	
मध्यम, ४	१० वज्रिका		मध्यम म
	११ प्रसारिणी		
	१२ प्रीति		
	१३ मार्जनी	मध्यम म	
पंचम, ४।	१४ क्षिति		पंचम प
	१५ रक्ता		
	१६ संदीपिनी		
	१७ आलापिनी	पंचम प.	धैवत ध
धैवत, ३	१८ मदंती		
	१९ रोहिणी		
	२० रम्या	धैवत ध	
निषाद, २	२१ उग्रा		निषाद नी
	२२ क्षोभिणी	निषाद नी	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरों के प्रकार

केवल सात स्वरों में संगीत में वैचित्र्य अथवा विविधता नहीं उत्पन्न की जा सकती थी। अतः कुछ अन्य श्रुतियाँ भी चुन ली गईं जिन्हें विकृत स्वर की संज्ञा दी गई। इस प्रकार स्वर दो प्रकार के हुए (१) शुद्ध अथवा प्राकृत और (२) विकृत। शुद्ध स्वर तो वे हैं जो मुख्य सात श्रुतियों पर स्थापित किए गए हैं। विकृत स्वर वे कहलाते हैं जिनका स्थान शुद्ध स्वरों से कुछ नीचे अथवा कुछ ऊँचे होता है। उदाहरणार्थ आधुनिक गांधार ८वीं श्रुति पर है। यह शुद्ध गांधार है। ७वीं श्रुति अथवा ९वीं श्रुति का स्वर विकृत गांधार कहा जायगा क्योंकि वह अपनी शुद्ध अवस्था से हट गया।

विकृत स्वर भी दो प्रकार के होते हैं :—(१) एक कोमल विकृत और (२) दूसरे तीव्र विकृत। शुद्ध स्वर से नीचे स्वर कोमल विकृत कहलाते हैं और उससे ऊँचे स्वर तीव्र विकृत कहलाते हैं। भारतीय संगीत में हम ऋषभ, गांधार, धैवत और निषाद इन चार स्वरों के कोमल प्रकारों का प्रयोग करते हैं और केवल मध्यम स्वर के तीव्र प्रकार का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार आधुनिक उत्तर हिंदुस्तानी संगीत में ७ शुद्ध, ४ कोमल और १ तीव्र, कुल मिलाकर १२ स्वर प्रयुक्त होते हैं। इन्हीं १२ स्वरों पर संपूर्ण संगीत आधारित है। षड़ज और पंचम स्वर केवल शुद्ध होते हैं, इसीलिए उन्हें अचल स्वर भी कहते हैं।

व्यवहार में शुद्ध ऋषभ को तीव्र ऋषभ कह कर पुकारने की भी प्रथा है और इसी प्रकार शुद्ध गांधार, शुद्ध धैवत और शुद्ध निषाद को तीव्र कह कर भी पुकारा जाता है। साथ ही, शुद्ध मध्यम को कोमल मध्यम कहने की भी प्रथा है, परन्तु ये नामकरण अधिकतर खान-दानी गवैयों में ही प्रचलित हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सप्तक

एक स्थान के भीतर सात शुद्ध स्वर होने के कारण उसे ही सप्तक कहने लगे। षड़ज-स्वर और उसके दुगुने ऊँचे षड़ज-स्वर के बीच का क्षेत्र, जिसमें सात शुद्ध स्वर होते हैं, सप्तक कहलाता है। सप्तक भी तीन होते हैं, मंद्र सप्तक, मध्य सप्तक और तार सप्तक। मंद्र से दुगना ऊँचा मध्य सप्तक और मध्य से दुगना ऊँचा तार सप्तक होता है। प्रत्येक सप्तक में सात शुद्ध स्वर और पाँच विकृत अर्थात् चार कोमल और एक तीव्र स्वर भी होते हैं। साधारणतया सा से लेकर नी तक के सातों स्वरों को क्रमानुसार सुनने, गाने या लिखने को सप्तक कहा गया है परन्तु यह परिभाषा पूर्णतया स्पष्ट नहीं है। वास्तव में तो सा से तार सा तक का पूरा क्षेत्र ही सप्तक होता है।

थाट

संगीत के अध्ययन में ध्वनि के बाद नाद, नाद के बाद श्रुति, श्रुति के बाद स्वर, स्वर के बाद सप्तक और सप्तक के बाद थाट का स्थान आता है। सात स्वरों का वह समूह जिसमें सातों स्वरों का शुद्ध या विकृत, कोई न कोई रूप अवश्य हो और जिससे रागों की उत्पत्ति हो सके, थाट कहलाता है। सप्तक के कुल बारह स्वरों में से ७ स्वरों के अनेक थाट बनाए जा सकते हैं परन्तु उनमें से केवल वे ही थाट चुने गए हैं जिनके स्वर ऐसे हों जो रंजक रागों की रचना कर सकें। ऐसे थाट उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में कुल दस माने गये हैं जिनमें प्रचलित सभी रागों का वर्गीकरण कर दिया गया है। ये दस थाट इस प्रकार हैं :—[कोमल स्वर के नीचे लेटी लाइन और तीव्र स्वर के ऊपर खड़ी लाइन लगाई जाती है:]

(१) बिलावल थाट :— सा, रे, ग, म, प, ध, नी।

(२) कल्याण थाट :— सा, रे, ग, मं, प, ध, नी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(३) खमाज थाट :— सा, रे, ग, म, प, ध, नी ।
(४) काफ़ी थाट :— सा, रे, ग, म, प, ध, नी ।
(५) आसावरी थाट :— सा, रे, ग, म, प, ध, नी ।
(६) भैरवी थाट :— सा, रे, ग, म, प, ध, नी ।
(७) भैरव थाट :— सा, रे, ग, म, प, ध, नी ।
(८) पूर्वी थाट :— सा, रे, ग, मं, प, ध, नी ।
(९) तोड़ी थाट :— सा, रे, ग, मं, प, ध, नी ।
(१०) मारवा थाट :— सा, रे, ग, मं, प, ध, नी ।

सप्तक सा और तार सा के मध्य का क्षेत्र है जिसमें सात शुद्ध स्वरों के साथ अन्य विकृत स्वर तथा सभी श्रुतियाँ भी सम्मिलित हैं परंतु थाट केवल सात स्वरों का समूह होता है। थाट की विशेषताएँ यही हैं कि (१) वह संपूर्ण अथवा सातों स्वर से युक्त होता है, (२) सुन्दर रागों को उत्पन्न करने की क्षमता उसमें होनी चाहिये, (३) थाट में साधारणतया एक ही स्वर के दो रूप भी आ सकते हैं — ऐसा कर्नाटक पद्धति के लोग मानते आए हैं। किन्तु हिन्दुस्तानी संगीत के थाटों में एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग किसी थाट में नहीं किया जाता। (४) थाट गाया नहीं जाता। अतः उसमें आरोहावरोह, रंजकता आदि आवश्यक नहीं हैं। ये वस्तुयें राग में होती हैं क्योंकि वह गाया जाता है।

वर्ण

स्वरों के प्रयोग की विभिन्न क्रियाओं को वर्ण कहते हैं। वर्ण चार प्रकार के होते हैं :—स्थाई, आरोही, अवरोही और संचारी। स्थाई वर्ण वह होता है जिसमें एक स्वर को ही अनेक बार गाया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बजाया जाय जैसे प प प अथवा ग ग ग ग। आरोही वर्ण स्वरों के चढ़ते क्रम को कहते हैं जैसे सा रे ग म प और अवरोही वर्ण स्वरों के उतरते क्रम को कहते हैं जैसे सां नी ध प म, (तार सप्तक के स्वरों पर बिन्दु लगाया जाता है)। संचारी वर्ण में उपरोक्त सभी वर्णों का मिश्रण होता है जैसे, सा रे ग म म म ध प म प प ग रे सा आदि। संगीत में स्वरों की क्रियाएँ ही हुआ करती हैं अतः उसमें वर्णों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

अलंकार

स्वरों की एक विशिष्ट प्रकार की नियमबद्ध रचना को अलंकार कहते हैं। अलंकारों में भी वर्णों का प्रयोग होता है परन्तु उसके आरोह व अवरोह दोनों में एक विशेष प्रकार का नियम बरता जाता है। उदाहरण के लिये नीचे कुछ अलंकार दिये जाते हैं :—

(१) आरोहः—सारेग, रेगम, गमप, मपध, पधनी, धनीसां,
अवरोहः—सांनीध, नीधप, धपम, पमग, मगरे, गरेसा ॥

(२) आरोहः—साग, रेम, गप, मध, पनी, धसां,
अवरोहः—सांध, नीप, धम, पग, मरे, गसा ॥

(३) आरोहः—सागरेसा, रेमगरे, गपमग, मधपम, पनीधप, धसांनीध,
अवरोहः—धनीसांध, पधनीप मपधम, गमपग, रेगमरे, सारेगसा ॥

प्रत्येक अलंकार का अवरोह, आरोह का उलटा होता है और उसके आरोह अथवा अवरोह के सभी टुकड़े एक ही नियम का पालन करते हुए आगे बढ़ते हैं। गले का अभ्यास अथवा वाद्य पर हाथ चलाने का अभ्यास पक्का करने में अलंकारों से बड़ी सहायता मिलती है। अलंकारों को ही कभी-कभी पलटे भी कहते हैं।

तान-आलाप

तान का अर्थ है विस्तार करना। स्वरों का विस्तार ही तान है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और वास्तव में आलाप भी एक प्रकार की तान ही है। परन्तु संगीत के क्षेत्र में स्वरों के द्रुत लय के विस्तार को तान कहते हैं और स्वरों के विलंबित लय के विस्तार को आलाप कहते हैं। आलाप आकार में भी होता है और नोम, तोम, न, री, द आदि अक्षरों की सहायता से भी होता है। तानें अनेक प्रकार की होती हैं। आकार की तानें भी सपाट, कूट, छूट और अलंकारिक आदि प्रकार की होती हैं और जिन तानों में गीत के शब्द भी जोड़ दिए जाते हैं उन्हें बोल-तानें कहते हैं। तान-आलाप द्वारा ही संगीत में वैचित्र्य और सुन्दरता उत्पन्न की जाती है और एक-एक गीत अथवा गत का एक घंटे से भी अधिक समय तक विस्तार किया जाता है।

राग

स्वर और वर्ण से युक्त वह सुन्दर रचना जो चित्त का रंजन करे, राग कहलाती है। रागों की उत्पत्ति थाटों से मानी गई है। थाट तो संपूर्ण होते हैं अर्थात् उनमें सातों स्वर अनिवार्य रूप से होते हैं। किंतु राग में सात, छः अथवा पाँच स्वर भी हो सकते हैं। राग गाए जाते हैं, अतः उन्हें रंजक होना ही चाहिए, राग के मुख्य नियम ये हैं :—(१) राग, रंजक होना चाहिए। उसके स्वरसमूह आकर्षक होने चाहिए। (२) राग के स्वर तथा वर्णों के नियम ऐसे होने चाहिये कि जिससे उसके स्वरूप के विकास का क्षेत्र विस्तृत बन सके और राग में वैचित्र्य उत्पन्न किया जा सके। (३) राग में कम से कम पाँच स्वर होने आवश्यक हैं। (४) राग में आरोह, अवरोह, पकड़, समय, वादी-संवादी आदि के निश्चित नियम होने आवश्यक हैं। इन शब्दों की व्याख्या नीचे की जायगी। (५) राग में एक साथ मध्यम और पंचम दोनों स्वर वर्ज्य नहीं हो सकते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग लक्षण

आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत में रागों के निम्नलिखित मुख्य १० लक्षण व्यवहार में माने जाते हैं :—

(१) थाट का आधार :—प्रत्येक राग को किसी न किसी थाट का आधार रखना चाहिये। थाट के द्वारा उसका साधारण स्वरूप कुछ स्पष्ट हो जाता है और उसी आधार से उसका मिलान उस थाट के अन्य रागों से भी किया जा सकता है। कभी-कभी ऐसे राग भी मिलते हैं या नये बनाये जा सकते हैं जो प्रचलित १० थाटों के अंतर्गत नहीं रखे जा सकते। अत: ऐसे रागों के लिए आवश्यकतानुसार कुछ नये थाटों को भी स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि वे राग एक स्पष्ट नियम और एक पृथक सुन्दर स्वरूप अवश्य रक्खें।

थाट बताने से राग में लगने वाले स्वरों का पता चल जाता है और यदि एकाध अन्य स्वर भी प्रयुक्त होते हों, तो थाट बतलाने के बाद उनका भी उल्लेख हो जाना चाहिए।

(२) राग का आरोह-अवरोह:—प्रत्येक राग का आरोह और अवरोह अवश्य होना चाहिए। मध्य सप्तक के षड़ज स्वर से आरंभ करके तार षड़ज तक के, स्वरों के चढ़ते क्रम को राग का आरोह कहते हैं और तार षड़ज से मध्य षड़ज तक स्वरों के लौटते क्रम को अवरोह कहते हैं। जैसे भूपाली राग का आरोह है सा रे ग प, ध सां और अवरोह है सां ध प ग रे सा।

जो स्वर राग में नहीं लगाये जाते उन्हें वर्ज्य स्वर कहते हैं। भूपाली में मध्यम और निषाद स्वर वर्ज्य हैं। आरोहावरोह में वर्ज्य स्वर छोड़ दिए जाते हैं। कुछ रागों का स्वरूप कठिन होता है और उनके स्वरों की चाल टेढ़ी होती है। ऐसे रागों का आरोह-अवरोह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सीधा न देकर, टेढ़ी चाल दिखाते हुए, स्पष्ट रूप बना कर देना चाहिये।

(३) राग की जाति—राग के आरोह और अवरोह में लगने वाले स्वरों की संख्या बताने वाली राग की जाति होती है। मुख्य जातियाँ तीन हैं (अ) संपूर्ण, (ब) षाड़व और (स) ओड़व। संपूर्ण जाति के राग वे होते हैं जिनमें सब स्वर अर्थात् सातों स्वर लगते हैं, जैसे राग भैरव। षाड़व जाति के राग वे होते हैं जिनमें छः स्वर लगते हैं जैसे राग हंसनारायणी (सा रे ग मं प नी सां, सां नी प मं ग रे सा)। ओड़व जाति के रागों में केवल पाँच स्वर लगाये जाते हैं जैसे राग मालकंस।

रागों की इन तीन जातियों का विस्तार करके कुल नौ जातियाँ बनाई गई हैं, जिनमें आरोह तथा अवरोह दोनों का भेद भी स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार कुल नौ राग-जातियाँ ये हैं:—

(१) सम्पूर्ण—सम्पूर्ण : जिसके आरोह और अवरोह दोनों सम्पूर्ण हों।

(२) सम्पूर्ण—षाड़व : जिसका आरोह सम्पूर्ण और अवरोह षाड़व हो।

(३) सम्पूर्ण—ओड़व : जिसका आरोह सम्पूर्ण और अवरोह ओड़व हो।

(४) षाड़व—सम्पूर्ण : जिसका आरोह षाड़व और अवरोह सम्पूर्ण हो।

(५) षाड़व—षाड़व : जिसका आरोह षाड़व और अवरोह भी षाड़व हो।

(६) षाड़व—ओड़व : जिसका आरोह षाड़व और अवरोह ओड़व हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(७) ओड़व—सम्पूर्ण : जिसका आरोह ओड़व और अवरोह सम्पूर्ण हो।

(८) ओड़व—षाड़व : जिसका आरोह ओड़व और अवरोह षाड़व हो।

(९) ओड़व—ओड़व : जिसका आरोह ओड़व और अवरोह भी ओड़व हो।

इनमें से दो जातियों के सरल उदाहरण दिए जा सकते हैं जैसे खमाज राग की जाति षाड़व—सम्पूर्ण है, क्योंकि उसके आरोह में केवल छः स्वर हैं और अवरोह सम्पूर्ण है (सा ग म प ध नी सां—सां नी ध प म ग रे सा) इसी प्रकार राग देश ओड़व—सम्पूर्ण जाति का है क्योंकि उसके आरोह में केवल पाँच स्वर हैं और अवरोह सम्पूर्ण है (सा रे म प नी सां—सां नी ध प मग रे सा)।

(४) राग के वादी—संवादी स्वर : राग में जो स्वर मुख्य होता है अर्थात् जिसका प्रयोग अन्य सभी स्वरों की अपेक्षा अधिक बार और अधिक देर तक होता है, उसे वादी स्वर कहते हैं। वादी स्वर का राग में बहुत महत्व होता है। कभी-कभी रागों में स्वरों की समानता होने पर भी, केवल वादी स्वर के भेद से ही भिन्नता आ जाती है अर्थात् राग ही बदल जाते हैं जैसे भूपाली और देशकार के स्वर (सा रे ग प ध) एक ही हैं किन्तु भूपाली का वादी स्वर गांधार तथा देशकार का वादी धैवत होने से दोनों का स्वरूप भिन्न हो गया है और इसीलिए वे दोनों पृथक राग माने गए हैं। वादी स्वर को राजा की उपमा दी जाती है।

राग का संवादी स्वर वह होता है जिसका प्रयोग राग में वादी स्वर से कम परन्तु अन्य स्वरों से अधिक होता है। वादी के बाद संवादी का महत्व आता है और वादी तथा संवादी स्वरों का एक दूसरे के साथ भी मधुर सम्बन्ध होता है। संवादी स्वर

२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिकतर वादी से चौथा या पाँचवा स्वर ही होता है जैसे बागेश्री और भीमपलासी रागों में मध्यम वादी और षड्ज संवादी है जिनमें चार स्वरों का अन्तर है। राग यमन में गांधार वादी और निषाद संवादी है जिनमें पाँच स्वरों का अन्तर है। संवादी स्वर को मंत्री की उपमा दी गई है।

वादी और संवादी स्वरों के अतिरिक्त जितने भी स्वर राग में लगते हैं वे अनुवादी स्वर कहलाते हैं, जिन्हें अनुचरों की उपमा दी जाती है। भूपाली में वादी गांधार और संवादी धैवत तथा शेष स्वर षड्ज, ऋषभ और पंचम अनुवादी हैं। वादी, संवादी और अनुवादी के अतिरिक्त कुछ स्वर विवादी भी होते हैं। विवादी स्वर वे होते हैं जिनका प्रयोग राग में नहीं होना चाहिए, परन्तु जिनका प्रयोग कुशल गायक कभी-कभी और न्यून मात्रा में, राग की सुन्दरता बढ़ाने के लिए करते हैं। विवादी स्वर को शत्रु की उपमा दी गई है और जिस प्रकार एक राजा की शोभा शत्रुओं के दमन तथा उन्हें अपने अधिकार में करने के बाद अधिक बढ़ जाती है, उसी प्रकार विवादी स्वर को अपने अधिकार में करके उसका कुशल प्रयोग राग की शोभा और भी बढ़ा देता है। वर्ज्य और विवादी स्वर में यही अन्तर है। वर्ज्य स्वर का कभी प्रयोग नहीं किया जाता। विवादी स्वर का प्रयोग राग हमीर में होता है। हमीर का विवादी स्वर कोमल निषाद है जिसका थोड़ा प्रयोग अवरोह में (सां, धं नी प) किया जाता है।

(५) राग की पकड़: रागका छोटा से छोटा मुख्य, स्वर-समुदाय जिससे राग पहिचाना जा सके, उस की पकड़ कहलाता है। पकड़ को राग का मुख्य अङ्ग भी कहते हैं जो राग-सूचक होता है जैसे राग हमीर की पकड़ है—सा, रेसा, गमनीध, क्योंकि केवल इतने स्वरों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से ही श्रोता कह उठता है कि यह हमीर राग है। पकड़ के सम्बन्ध में सब संगीतज्ञ एक मत नहीं हैं। थोड़ा बहुत अन्तर सब कर देते हैं, जैसे हमीर की पकड़ कुछ लोग इस प्रकार भी मानते हैं—गम॑ध, म प, गमरेसा परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इन सब पकड़ों में मुख्य भाव अथवा अङ्ग समान रूप से मिलता है। राग को गाते समय गायक बारंबार पकड़ वाला स्वर समुदाय बीच-बीच में गाता है, जिससे उस राग का स्वरूप न बिगड़ने पाये।

(६) न्यास के स्वरः:किसी आलाप अथवा गीत की समाप्ति जिस स्वर पर होती है उस अन्तिम स्वर को उस राग का न्यास-स्वर कहते हैं। यह परिभाषा न्यास की प्राचीन परिभाषा है। प्राचीन काल में गीत अथवा आलाप के मध्य के अनेकछोटे-छोटे उप-विभागों के अन्तिम स्वरों को अपन्यास कहते थे और उनका भी पर्याप्त महत्व था। किन्तु आज कल न उस रूप में न्यास स्वर का ही महत्व अथवा प्रयोग माना जाता है और न अपन्यास स्वरों का। आज तो किसी भी राग को किसी भी स्वर पर समाप्त कर सकते हैं और अधिकतर तो सम के स्वर पर गीत को समाप्त करते हैं और षड़ज पर आलाप को समाप्त करते हैं। परन्तु कोई एक नियम नहीं है। इसी प्रकार अपन्यासों के स्वर भी किसी राग के निश्चित नहीं किये गए हैं।

आज कल केवल कुछ ऐसे स्वर मान लिए जाते हैं कि जिन पर बीच बीच में रुकना राग की शोभा बढ़ाता है और उसके स्वरूप को स्पष्ट करता है, इन सभी स्वरों को आधुनिक संगीत में न्यास के स्वर कहने लगे हैं। उदाहरणार्थं भूपाली राग में मुख्य न्यास के स्वर षड़ज, गांधार और पंचम हैं जिन पर छोटे छोटे आलाप लेकर समाप्त करते हैं। षड़ज तो सभी रागों का एक न्यास का स्वर रहता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही है। राग के एक एक न्यास के स्वर पर अनेक ढंग से आलाप करते हुए आ आ कर रुकना आज के संगीत में एक प्रशंसा की बात मानी जाती है।

कभी कभी न्यास के स्वरों को बदलने से भी राग बदल जाता है अथवा राग का स्वरूप बिगड़ जाता है जैसे राग बसंत में यदि निषाद पर न्यास करा जायगा तो उसका स्वरूप बिगड़ जायगा और राग परज की छाया आ जायगी, भीमपलासी में मध्यम की अपेक्षा पंचम पर अधिक न्यास दिखाने से धनाश्री की छाया आने का भय रहता है। अतः न्यास के स्वरों पर ध्यान रखना आवश्यक है।

(७) पूर्वांग या उत्तरांग की प्रधानता —सप्तक के दो भाग होते हैं। एक तो षड्ज से लेकर मध्यम तक; जिसे पूर्वांग कहते हैं और दूसरा पंचम से तार षड्ज तक, जिसे उत्तरांग कहते हैं। आगे चल कर पूर्वांग का क्षेत्र षड्ज से पंचम तक और उत्तरांग का क्षेत्र मध्यम से तार षड्ज तक माना जाने लगा। इसका कारण बाद को स्पष्ट होगा।

पूर्वांग-प्रधान राग उन्हें कहते हैं जिनकी मुख्य चलन सप्तक के पूर्वांग और मंद्र स्थान में अधिक होती है। ऐसे रागों का वादी स्वर भी सप्तक के पूर्वांग में होता है जैसे राग यमन का वादी गांधार, पूर्वांग में है और इस राग का विस्तार मंद्र सप्तक और मध्य सप्तक के प्रथम भाग में अधिक होता है। इसीलिए यमन पूर्वांग प्रधान राग है। पूर्वांग प्रधान रागों को ही पूर्व राग कहते हैं।

उत्तरांग-प्रधान राग उन्हें कहते हैं जिनका मुख्य विस्तार सप्तक के उत्तरांग तथा तार सप्तक में होता है। इन रागों का वादी स्वर भी सप्तक के उत्तरांग में होता है उत्तरांग प्रधान रागों को उत्तर राग भी कहते हैं। भैरव एक उत्तर राग है। उसका वादी स्वर धैवत है और उत्तरांग में उसकी चलन अधिक होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी राग के विस्तार के समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वह पूर्वाङ्ग-प्रधान राग है अथवा उत्तरांग-प्रधान। इससे राग-हानि नहीं होने पाती वरन् राग का स्वरूप अधिक स्पष्ट हो जाता है। भूपाली को यदि उत्तरांग-प्रधान बना कर गाया जायगा तो वह देशकार के सदृश प्रतीत होने लगेगा। अतः पूर्वांग-उत्तरांग-प्राधान्य भी राग का एक मुख्य लक्षण है।

(८) राग का समय—प्रत्येक भारतीय राग को गाने के लिए एक निश्चित समय माना गया है। अपने निश्चित समय में वह राग अत्यन्त सुन्दर और प्रभावशाली होता है। कुछ राग प्रातःकाल ही अच्छे लगते है, कुछ सायंकाल और कुछ रात्रि के समय में, इत्यादि, फिर, कुछ राग मौसमी होते हैं जैसे। वर्षा ऋतु के राग मल्हार, मेघ और बहार और बसन्त ऋतु के राग बसंत और बहार। मौसमी राग अपने मौसम में हर समय गाये-बजाये जा सकते हैं।

एक साधारण नियम राग-समय के लिये स्वीकार किया गया है कि जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में होता है अर्थात् जो राग पूर्वांग-प्रधान अथवा पूर्वराग होते हैं, वे बारह बजे दिन से लेकर बारह बजे रात तक के बीच के किसी समय में गाये जाते हैं, जैसे राग यमन एक पूर्व राग है (वादी गांधार) और उसका समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। इसके विपरीत, जो राग उत्तरांग प्रधान हैं अर्थात् उत्तर राग हैं और जिनका वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग में होता है, वे बारह बजे रात्रि से लेकर बारह बजे दिन तक के बीच के किसी समय में गाये जाते हैं जैसे राग भैरव एक उत्तर-राग है (वादी धैवत) और उसका समय प्रातःकाल का प्रथम प्रहर है।

कुछ राग अपवाद स्वरूप ऐसे भी हैं जिनका समय तो प्रातःकाल का है अर्थात् वे उत्तरांग प्रधान राग हैं परन्तु उनका वादी स्वर मध्यम है जो वास्तव में सप्तक के पूर्वाङ्ग का स्वर है और कुछ राग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसे हैं जिनका समय तो रात्रि का है पर उनका वादी स्वर पञ्चम है जो सप्तक के उत्तरांग का है। इन अपवादों को नियम में लाने के लिए ही सप्तक के पूर्वाङ्ग तथा उत्तराङ्ग की सीमाएँ बढ़ा दी गईं और अब पूर्वाङ्ग सा से प तक और उत्तराङ्ग म से सां तक माना जाता है। इस प्रकार मध्यम तथा पञ्चम, पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग, दोनों के स्वर हो गये हैं। मध्यम वादी वाले उत्तराङ्ग प्रधान रागों का नमूना ललित राग है और पञ्चम वादी वाले पूर्वं रागों का नमूना कामोद है। ललित का समय प्रातःकाल और कामोद का रात्रि माना जाता है।

जो राग सूर्योदय अथवा सूर्यास्त के समय में गाए जाते हैं वे सन्धिप्रकाश राग कहलाते हैं, क्योंकि उस समय दिन और रात को सन्धि होती है। सन्धिप्रकाश का समय सङ्गीतज्ञों ने चार से सात बजे तक सबेरे और शाम माना है। सन्धिप्रकाश रागों में रिषभ और धैवत स्वर कोमल तथा गांधार शुद्ध होता है। सबेरे के सन्धिप्रकाश रागों में शुद्ध मध्यम का प्रयोग अधिक और शाम के सन्धिप्रकाश रागों में तीव्र मध्यम का प्रयोग अधिक होता है।

(९) **आविर्भाव-तिरोभाव :** कुशल गायक राग-विस्तार के अन्तिम अंश में कभी-कभी समप्रकृत रागों की छाया लाकर वैचित्र्य उत्पन्न करते हैं और फिर उस राग को स्पष्ट कर देते हैं। जब कोई राग गाते समय थोड़ी देर के लिए उसका स्वरूप छिपाया जाता है, तब उस क्रिया को तिरोभाव कहते हैं। यह तिरोभाव या तो किसी समप्रकृत राग (अथवा उस राग से कुछ-कुछ मिलते-जुलते राग) की छाया लाकर किया जाता है या अन्य स्वरसमूहों की सहायता से उस राग को छिपा दिया जाता है। परन्तु राग का यह तिरोभाव देर तक नहीं जारी रक्खा जाता है। तुरन्त ही उस राग के मुख्य स्वर-समूहों द्वारा फिर से उसका स्वरूप स्पष्ट कर दिया जाता है। राग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को छिपाने के बाद फिर से उसके स्वरूप को स्पष्ट करने को आविर्भाव कहते है। (तिरोभाव और आविर्भाव का विस्तृत विवेचन अगले भाग में किया जायेगा।)

(१०) राग का रस : भारतीय सङ्गीत में साहित्य के नव-रसों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नव-रस जीवन के सूक्ष्मरस हैं और सङ्गीत का सम्बन्ध भी मनुष्य की अन्तर्प्रवृत्तियां तथा मनोभावों से है। अतः भारतीय रागों का रसों से सम्बन्ध होना स्वाभाविक है।

प्रत्येक राग का एक रस माना गया है, यद्यपि इस विषय में अभी किसी निश्चित निष्कर्ष पर सङ्गीत-विद्वान नहीं पहुँचे हैं कि किस राग में कौन सा रस होना चाहिए और क्यों। एक अनुमान सा लगाया गया है। फिर भी कभी कुछ रागों के विषय में हम निःसंकोच कह सकते हैं कि वे किस रस के पोषक हैं; जैसे जोगिया राग का रस करुण है, मालकंस का शांत रस और शङ्करा का वीर रस, इत्यादि। इस विषय में मतभेद मिलता है। साधारणतया सङ्गीत में केवल २, ३ रसों की ही प्रधानता मानी गई है; जैसे शृङ्गार, शांत और वीर। वाद्यों की सहायता से और रागों के अतिरिक्त, स्वरों के प्रयोग से अन्य रसों की अभिव्यक्ति भी सफल हो सकती है, ऐसा आभास आज के सिनेमा सङ्गीत द्वारा पाया जा सकता है। किन्तु इस सम्बन्ध में बहुत अधिक खोज और अध्ययन की आवश्यकता है।

यदि हम रस का साधारण अर्थ भी लें तो हम देखते हैं कि प्रत्येक राग के वातावरण का ही एक निजी रस होता है जिसका प्रभाव हमारे हृदय पर सुन्दर पड़ता है। यह सरसता गायन अथवा वादन में अवश्य ही होनी चाहिए और प्रत्येक राग के गायन में उसका वातावरण, उसका स्वरूप अथवा उसका रस पूर्ण और स्पष्ट रूप से स्थापित करना ही गायक की सफलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राचीन राग लक्षण

ऊपर हमने राग के उन दस लक्षणों की संक्षिप्त व्याख्या की है जिनका सम्बन्ध आज के हिन्दुस्तानी सङ्गीत से है। प्राचीन काल में भी रागों के दस मुख्य लक्षण माने जाते थे जिनका स्पष्टीकरण राग-गायन में होता था। वे दस लक्षण ये थे:—ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, षाड़वत्व, औड़वत्व, अल्पत्व, बहुत्व, मन्द्र और तार। ग्रह किसी गीत अथवा आलाप के प्रारम्भिक स्वर को कहते थे। अंश, राग के वादी स्वर अर्थात् मुख्य स्वर को कहते थे। न्यास गीत अथवा आलाप के अन्तिम स्वर को कहते थे और अपन्यास, उस गीत या आलाप के बीच के छोटे-छोटे उपविभागों के अंतिम स्वरों को कहते थे। षाड़वत्व और औड़वत्व से तात्पर्य जाति से था। अर्थात् गायन-वादन में किस राग में कितने स्वर वर्जित करना चाहिए, इसका ध्यान रक्खा जाता था, मंद्र और तार का संबंध राग की दो सीमाओं से था, अर्थात् प्राचीन काल में प्रत्येक राग के विषय में यह निश्चित था कि उसमें मंद्र में किस स्वर तक नीचे जा सकते हैं और तार में किस स्वर तक ऊपर जा सकते हैं। अल्पत्व का अर्थ है किसी स्वर का कम महत्व दिखाना और बहुत्व का अर्थ है किसी स्वर का अधिक महत्व दिखाना। प्राचीन संगीत में प्रत्येक राग में अल्पत्व और बहुत्व के स्वर निश्चित रहते थे।

आधुनिक संगीत में उपरोक्त दसों लक्षणों में से कुछ का प्रयोग है, यद्यपि ठीक उसी रूप में नहीं। ग्रह, मंद्र और तार, इन तीन लक्षणों का महत्व आज नहीं रहा है।

वक्र स्वर, कण और मींड

रागों के गायन-वादन में सौंदर्य उत्पन्न करने के लिए वक्र स्वर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कण-स्वर और मींड का प्रयोग आवश्यक है। आरोह अथवा अवरोह करते समय यदि किसी एक स्वर तक जाकर फिर पीछे वाले स्वर पर लौट कर तब अगले स्वर पर आया जाता है, तो जिस स्वरसे लौटते हैं, उसे वक्र स्वर कहते हैं। उदाहरण के लिए प ध नी ध सां में नी वक्र है। यह वक्रत्व आरोह में हुआ। इसी प्रकार अवरोह के वक्रत्व का उदाहरण है प म ग म रे।स जिसमें ग वक्र है। रागों में जो स्वर वक्र होते हैं, उनके वक्रत्व का ध्यान न रखने से राग की सुँदरता और शुद्धता बिगड़ जाती है। हमीर में गांधार वक्र है (ग म रे सा) और शंकरा में निषाद वक्र है (प नी ध सां नी)

किसी स्वर को गाते समय यदि हम किसी अन्य स्वर का स्पर्श उसमें करते हैं तो उस अन्य स्वर को स्पर्श स्वर अथवा कण कहते हैं। जैसे, यदि धैवत का स्पर्श देते हुए पंचम गायेंगे तो धैवत कण कहलाएगा (धप)। (कण स्वर को मूल स्वर की बाईं ओर ऊपर लिखा जाता है।)

किसी एक स्वर से दूसरे स्वर तक आवाज को मिलाते हुए जाने को मींड कहते हैं। मींड में बीच के स्वर छूते तो जाते हैं किंतु उनमें से कोई पृथक् पता नहीं चलता. जैसे पंचम से गांधार की मींड में मध्यम पृथक् नहीं पता चलेगा परंतु आवाज प से ग तक मिली हुई आएगी। दोनों स्वरों के ऊपर तिरछी रेखा खींच कर मींड दिखाई जाती है (प ग)।

आश्रय राग

थाटों से राग उत्पन्न होते हैं इसलिए दसों थाटों को जनक थाट कहते हैं। और राग, उत्पन्न होने वाली वस्तु होने के नाते, जन्य राग कहलाते हैं। अर्थात् सभी थाट जनक हैं और सभी राग जन्य हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी थाट का सब से मुख्य राग, जिसके नाम से वह थाट पुकारा जाता है और जिसके आश्रित उस थाट के अन्य राग किसी न किसी अंश में अवश्य रहते हैं, उसे उस थाट का आश्रय राग कहते हैं। प्रत्येक थाट का एक आश्रय राग होता है जैसे भैरवी थाट का आश्रय राग भैरवी है और भैरव थाट का आश्रय राग भैरव है। भैरव थाट के अन्य रागों में भी भैरव आश्रय राग का कुछ न कुछ अङ्ग और आधार अवश्य होगा जैसे भैरव थाट का ही राग कालिंगड़ा है जिसके स्वर सभी भैरव राग के समान हैं। जनक थाट के सभी जन्य रागों में से मुख्य जन्यराग ही आश्रय राग होता है और अन्य सभी जन्यरागों में उस आश्रय राग की छाया रहती है।

शुद्ध, छायालग और संकीर्ण राग

शुद्ध राग उन्हें कहते हैं जो अपने निश्चित नियमों का पालन करते हुए शुद्धता सहित गाए जाते हैं और जिनमें किस अन्य राग की छाया नहीं आती है। छायालगत्व अथवा छायालगी राग उन्हें कहते हैं जिनमें किसी एक अन्य राग की भी छाया आ जाय। संकीर्ण राग वे होते हैं जिनमें दो से अधिक रागों की छाया आए और स्वरूप मिश्रित तथा कठिन हो। यमन, शुद्ध बिलावल आदि शुद्ध राग हैं क्योंकि इनका स्वरूप स्वतंत्र और स्पष्ट रूप से स्वतंत्र झलकता है। जयजयवंती एक छायालग राग कहा जा सकता है क्योंकि उसमें देश की छाया आती है (देश अङ्ग से गाये जाने वाले जयजयवंती राग में)। मिश्र पीलू, सिंध काफ़ी आदि राग संकीर्ण राग हैं क्योंकि इनमें अनेक रागों की छाया दिखाई जाती है। कुछ बड़े राग भी संकीर्ण होते हैं जैसे षट आदि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय अध्याय

लय

संगीत में समय की गति को लय कहते हैं। गाने, बजाने अथवा नाचने में समय की चाल की कोई न कोई रफ़्तार अवश्य होती है; वही लय है। यह लय तीन प्रकार की मानी गई है :— विलंबित, मध्य और द्रुत। बहुत धीमी लय को विलम्बित लय कहते हैं, जैसी बड़े ख्यालों और मसीतखानी गतों में होती है। यदि हम हाथों से ताली देते समय एक के बाद दूसरी ताली बहुत देर-देर में दें तो ताली की रफ़्तार धीमी कहलाएगी और उसी को हम विलंबित लय कहेंगे। मध्य लय उसे कहते हैं जो न बहुत धीमी हो और न बहुत तेज़। साधारणतया जिस चाल से हम चलते हैं अथवा जिस गति में हम सरलता से गाते, बजाते हैं, वह न धीमी होती है और न तेज़। उसकी गति मध्यम होती है। इसीलिए उसे मध्य लय कह कर पुकारते हैं। झपताल के गीत अधिकतर मध्य लय में ही गाये जाते हैं। त्रिताल में भी छोटे ख्यालों की साधारण विद्यार्थियों के लिये मध्य लय ही रक्खी जाती है और सितार के विद्यार्थी भी साधारणतया रज़ाखानी गत मध्य लय में बजाते हैं। द्रुत लय उसे कहते हैं जो बहुत तेज़ होती है। अधिक अभ्यास हो जाने पर गायक अथवा वादक छोटे ख्याल अथवा रज़ाखानी गतें द्रुत लय में बजाया करते हैं। हाथ पर एक के बाद दूसरी ताली जल्दी-जल्दी देने से द्रुत लय होती है। साधारणतया मध्य लय से आधी तेज़ विलंबित और दुगुनी तेज़ द्रुत लय होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लय का संसार में प्रत्येक क्षेत्र में महत्व है। यहाँ तक कि सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि ग्रह, नक्षत्र भी एक निश्चित लय में घूमा करते हैं। लय ठीक और गलत दोनों हो सकती है। जब हम ताली देते हैं, तब यदि प्रत्येक दो तालियों के बीच का समय एक ही रहता है तो हम कहते हैं कि लय ठीक है। इस "लय में है" का अर्थ वास्तव में होता है "ठीक लय में है"। परन्तु जब सब तालियाँ बेढंगी रफ़्तार में दी जाती हैं अर्थात प्रत्येक ताली का समय बदलता जाता है, तब हम कहते हैं कि लय गलत है अथवा लय बिगड़ गई है अथवा साधारणतया यह भी कह देते हैं कि ताली लय में नहीं है। यहाँ "लय में नहीं" का अर्थ है "ठीक लय में नहीं"।

मात्रा

संगीत में समय नापने के पैमाने अथवा इकाई को मात्राएँ कहते हैं। दूसरे शब्दों में वह लय नापने का मापदण्ड है। जब हम समान लय में हाथ से ताली देते हैं तो एक के बाद दूसरी ताली के बीच के समय को ही एक मात्रा कहेंगे। ऐसी ताली दो देंगे तो दो मात्राएँ होंगी, इत्यादि, इस प्रकार हम लय को नापने का प्रयत्न करते हैं। विलम्बित लय में एक मात्रा अधिक लम्बी होती है अर्थात् मात्रा का प्रमाण बड़ा होता है। मध्य लय में मात्रा न बहुत बड़ी और न छोटी होती है। द्रुत लय में मात्रा बहुत छोटी है। बड़े ख्यालों में कभी-कभी मात्रा इतनी बड़ी होती है कि उसमें आठ-आठ अथवा सोलह-सोलह स्वर लेकर तानें गाई जाती हैं। सितार-वादन के अंतिम भाग में लय इतनी द्रुत कर दी जाती है कि तबले के बोल तथा सितार के झाले के बोलों की तीव्रता श्रोताओं को चमत्कृत कर देती है। इस द्रुत लय में एक मात्रा कदाचित् एक सेकंड के आठवें हिस्से के बराबर हो जाती है। शास्त्रों में एक मात्रा को एक सेकंड के बराबर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माना है परन्तु व्यवहार में आवश्यकतानुसार उसे लंबा या छोटा बना लिया जाता है।

ताल

संगीत में समय नापने के साधन को ताल कहते हैं, जो विभिन्न मात्राओं का समूह होता है। मात्रा प्रमाण है और ताल साधन। स्वर और ताल को हम संगीतकला के दो पैर कह सकते हैं क्योंकि उनमें से एक के अभाव में भी वह लँगड़ी हो जाती है। ताल अनेक मात्राओं के होते हैं जैसे तीनताल १६ मात्राओं का होता है, एक ताल १२ मात्राओं का होता है, इत्यादि। ताल दिखाने के मुख्य वाद्य, तबला, पखावज आदि होते हैं, जिनमें प्रत्येक तालों के ठेके बजाये जाते हैं। तबला अथवा पखावज में बजाए जाने वाले विभिन्न तालों के बोलों को उनके ठेके कहते हैं। तबले पर विभिन्न ढंग से आवाज़ निकलती है और उन्हीं ध्वनियों के पृथक्-पृथक् कुछ विशिष्ट नाम रख दिए गए हैं जैसे धा, ता, न, दिं, तिट, आदि। इन्हीं ध्वनियों से तालों के बोल अथवा ठेके बना लिए गए हैं।

संपूर्ण ताल को जिन छोटे हिस्सों में बाँटा गया है उन्हें उस ताल के विभाग कहते हैं। विभाग २, ३, ४ या अधिक मात्राओं के होते हैं जैसे तीन ताल के चारों विभाग ४-४ मात्राओं के हैं; झप-ताल के चार विभाग क्रमशः २, ३, २ और ३ मात्राओं के हैं। विभागों का ताल में बहुत अधिक महत्व है क्योंकि उनसे ताल अधिक स्पष्ट हो जाता है। विभागों को एक दूसरे से अलग स्पष्ट करने के लिये, प्रत्येक विभाग के प्रारम्भिक मात्रा पर या तो हाथ से ताली देते हैं या हाथ एक ओर नीचे हिलाकर खाली दिखाते हैं।

ताल-विभागों की उन प्रारंभिक मात्राओं को ताली कहते हैं, जिन पर हाथ से ताली दी जाती है और तबले पर जोर दिया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताल की प्रथम मात्रा, जहाँ से ताल प्रारंभ होता है और जिस मात्रा पर तबले और गाने-बजाने में सबसे अधिक जोर दिया जाता है, उसे ताल की सम कहते हैं। सम ताल की प्रथम ताली है क्योंकि वह उसके प्रथम विभाग की प्रारंभिक मात्रा है। ताल-विभागों की उन प्रारंभिक मात्राओं को, जिन पर ताली नहीं देते वरन हाथ को एक ओर हिला देते हैं, उन्हें खाली कहते हैं। ताली और खाली में अंतर दिखाने के लिये तबले के ठेकों में भी दोनों के बोल कुछ भिन्न होते हैं जैसे अधिकतर खाली पर ता, ती, आदि वर्ण रक्खे जाते हैं और ताली पर धा, धी, आदि वर्ण रक्खे जाते हैं जिनमें बायें और दाहिने, दोनों का प्रयोग होता है। ताली को भरी कह कर भी पुकारते हैं।

विभागों, ताली, खाली, सम और ठेके के विभिन्न वर्णों की सहायता से ही गायक अथवा वादक, तबला देखकर समझता रहता है कि वह कब किस मात्रा पर है और तभी वह आलाप, तान आदि लेते हुए ठीक स्थान से गीत अथवा गत के मुखड़े को उठाकर तबले की सम के साथ अपनी सम मिला सकता है। सुरीलागायन ताल का सुँदर योग पाकर और भी सुँदर और प्रभावशाली बन जाता है।

ताल की पहली मात्रा से अंतिम मात्रा तक के क्षेत्र को एक पूरा आवर्ध अथवा आवर्तन कहते हैं। अर्थात् सम से सम तक का भाग आवर्तन हुआ, जैसे झपताल का एक आवर्तन १० मात्राओं का हुआ—पहली से दसवीं मात्रा तक, क्योंकि १० वीं के बाद फिर दूसरी सम आ जाती है। २० मात्राओं में झपताल के कुल दो आवर्त हुए इसी प्रकार ४८ मात्राओं में तीनताल के पूरे तीन आवर्त हुए। गीतों की स्थायी अथवा अंतरा अधिकतर दो से चार आवर्तन तक के होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभिन्न लयकारियाँ

यदि हम मध्य लय में हाथ से ताली देकर प्रत्येक मात्रा अलग-अलग दिखाते हैं और प्रत्येक ताली पर गिनती के एक, दो, तीन, चार आदि अंक बोलते हैं तो हम अंकों को ठाह लय में बोलते हैं। बराबरी के लय में गाने बजाने अथवा ताली देने को ही ठाह की लय कहते हैं। जो गीत जैसा बना हो, उसे उसी प्रकार ठीक-ठीक गाने से उसकी ठाह लय हुई।

अब यदि प्रत्येक मात्रा पर हाथ से ताली देते हुए हम गिनती के दो-दो अंकों को एक-एक मात्रा में बोलेंगे तो लय ठाह से दुगुनी तेज़ मानी जाएगी अर्थात अब एक ही ताली में हम दो अंक एक, दो बोलेंगे, दूसरी मात्रा में तीन चार बोलेंगे इत्यादि। गीतों में भी लय दुगुनी करते समय हम दो मात्राओं के शब्दों अथवा स्वरों को एक मात्रा में बोल जाते हैं और इसी प्रकार यदि स्थायी १० मात्राओं की है तो दुगुनी लय में गाते समय हम उसे ५ मात्राओं में ही समाप्त कर देते हैं। यही तालों, गीतों, स्वरों अथवा अंकों की द्विगुण या दुगुन कहलाती है। एक मात्रा के भीतर दो मात्राओं को गाने से जो लयकारी बनती है, उसे दुगुन कहते हैं, जिसमें रफ़्तार ठाह से दुगुनी होती है।

इसी प्रकार लय को और तेज़ कर के तीन मात्राओं के अंकों, स्वरों या शब्दों को एक मात्रा के भीतर बोलने से जो लयकारी उत्पन्न होती है, उसे तिगुन कहते हैं। तिगुन में लय अथवा रफ़्तार ठाह से तिगुनी हो जाती है। इसी प्रकार चौगुन की लयकारी उसे कहते हैं जिसमें चार मात्रायें एक मात्रा के भीतर बोली जाती हैं, अथवा जिसमें लय चौगुनी तेज़ हो जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंकों की सहायता से उपरोक्त लयकारियाँ इस प्रकार स्पष्ट की जा सकती हैं:—

ठाह लय में —१ २ ३ ४ (सब अंक एक-एक मात्रा में।)
दुगुन लय में — १ २ ३ ४ ५ ६ (कोष्ठ के भीतर के अंक एक मात्रा में माने जाते हैं।)
तिगुन लय में— १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
चौगुन लय में— १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ इत्यादि।

साधारणतया तिगुन लयकारी को ही बहुत से संगीतज्ञ आड़ भी कह देते हैं, किंतु यह आड़ का व्यापक और सामान्य अर्थ है कि कोई भी तिरछी चाल की लयकारी आड़ कही जाती है। परंतु विशेष अर्थ में आड़, डेढ़गुन को कहते हैं जिसमें दो मात्राओं के भीतर तीन मात्रायें अर्थात् एक में डेढ़ मात्रायें बोली जाती हैं। आड़ को अंकों द्वारा इस प्रकार लिखेंगे:— १ऽ२ ऽ३ऽ

अर्थात् पहले तिगुन की लयकारी कायम करके फिर उसके दो-दो हिस्सों में एक-एक अंक बोले जायेंगे, इस प्रकार से दो मात्राओं की दो तालियों में ही कुल तीन अंक बोले जाते हैं।

इसी प्रकार अनेक प्रकार की लयकारियाँ होती हैं। एक मात्रा के भी विभिन्न बाट करे जाते हैं। एक मात्रा में दो स्वर बोलने से (सारे) दोनों की आधी-आधी मात्रा हुई। एक मात्रा में तीन स्वर (सा रे ग) बोलने से तीनों स्वरों पर अलग-अलग $\frac{1}{3}$ मात्रा हुई। एक मात्रा में चार स्वर (सा रे ग म) बोलने से प्रत्येक पर चौथाई मात्रा हुई, इत्यादि।

मुख्य सरल तालों का विवरण

नीचे कुछ मुख्य सरल तालों को पूर्णताललिपि में लिखा जाता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम पंक्ति में मात्रायें, द्वितीय पंक्ति में ताल का ठेका अथवा उसके बोल और तृतीय में सम, ताली और खाली के चिह्न दिए गए हैं (सम का चिह्न = ×; खाली का चिह्न = ०: ताली के स्थान पर ताली की संख्या लिखी जाती है।) प्रत्येक विभाग के अंत में एक विभाजक रेखा खींची गई है। एक मात्रा लंबा करने के लिए उच्चारण का चिह्न ऽ लगा दिया जाता है, जिसे अवग्रह कहते हैं। एक कोष्ठक के भीतर के सब बोल एक मात्रा के माने जाते हैं जैसे तिरकिट का अर्थ हुआ, एक मात्रा में चार अक्षर ति, र, कि और ट मिलाकर कुल तिरकिट एक मात्रा के भीतर बोले जाएँगे। स्वभावतः ति, र, कि और ट चारों पर अलग-अलग चौथाई-चौथाई मात्रा होगी।

तीनताल

मात्रा १६, विभाग ४; ताली १, ५ और १३ पर, खाली ९ वीं मात्रा पर।:

मात्राः-	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
बोल :-	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
ताल चिह्न :-	×				२				०				३			

झपताल

मात्रा १०, विभाग ४, ताली १-३-८ पर, खाली ६ पर।

मात्रा :—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
बोल :—	धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
ताल चिह्न:—	×		२			०		३		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूल ताल

मात्रा १०, विभाग ५, ताली १-५-७ पर, खाली ३-९ पर।

मात्राः-	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
बोल :-	धा	धा	दिं	ता	किट	धा	तिट	कत	गदि	गन
ताल चिह्न :-	×		०		२		३		०	

एक ताल

मात्रा १२, विभाग ६, ताली १-५-९-११ पर, खाली ३-७ पर।

मात्राः-	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ठेका :-	धिं	धिं	धागि	तुक	तू	नां	क	त्ता	धागि	तुक	धी	ना
ताल चिह्न	×		०		२		०		३		४	

चारताल

मात्रा १२, विभाग ६, ताली १-५-९-११ पर, खाली ३-७ पर।

मात्राः-	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ठेका :-	धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कत्त	गदि	गन
ताल-चिह्न :-	×		०		२		०		३		४	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धमार ताल

मात्रा १४, विभाग ४, ताली १-६-११ पर, खाली ८ पर।

मात्राः	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
ठेका :-	क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
ताल-चिह्न :-	×					२		०			३			

दीपचंदी ताल

मात्रा १४, विभाग ४, ताली १-४-११ पर, खाली ८ पर।

मात्राः-	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
ठेका :-	धा	धिं	ऽ	धा	गे	तिं	ऽ	ता	तिं	ऽ	धा	गे	धिं	ऽ
ताल चिह्न :-	×			२				०			३			

तीवरा ताल

मात्रा ७, विभाग ३, ताली १-४-६, खाली नहीं है।

मात्रा :-	१	२	३	४	५	६	७
ठेका :-	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
तालचिह्न:-	×			२		३	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपक ताल

मात्रा ७, विभाग ३, ताली ४-६ पर, खाली और सम १ पर।

मात्रा :-	१	२	३	४	५	६	७
ठेका :-	ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना
ताल चिह्न:-	० ×			२		३	

अथवा :-	धीं	धा	तूक	धीं	धीं	धा	तूक
	० ×			२		३	

(नोट :— लेखक के मत में खाली और सम का एक ही मात्रा पर और वह भी पहली मात्रा पर होना ठीक नहीं। "ती" अधिकतर खाली के स्थान पर प्रयुक्त होता अवश्य है पर यह कोई अनिवार्य नियम नहीं है। अतः उचित यही है कि पहली पर केवल सम मानी जाय और तीवरा की भाँति इस ताल में खाली न मानी जाय)

कहरवा ताल [मध्य लय]

मात्रा ८, विभाग ४, ताली १-३-७, खाली ५ पर।

मात्रा :-	१	२	३	४	५	६	७	८
ठेका :-	धा	धी	ना	ती	ना	ना	धी	ना
ताल चिह्न:-	×		२		०		३	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहरवा ताल (द्रुत लय)

मात्रा ४, विभाग २, ताली १ पर, खाली ३ पर।

मात्रा :-	१	२	३	४
ठेका :-	धागि	नति	नक	धिन्
ताल चिह्न :-	×		०	

धुमाली ताल

मात्रा ८, विभाग ४; ताली १-३-७ खाली ५ पर।

मात्रा :-	१	२	३	४	५	६	७	८
ठेका :-	धिं	धिं	धा	तिं	तृक	धिं	धागि	तृक
ताल चिह्न :-	×		२		०		३	

दादरा ताल

मात्रा ६, विभाग २, ताली १, खाली ४ पर।

मात्रा :-	१	२	३	४	५	६
ठेका :-	धा	धी	ना	धा	ती	ना
ताल चिह्न :-	×			०		
अथवा :-	धि	धिं•	ना	धा	तू	ना
	×			०		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विलंबित त्रिताल अथवा तिलवाड़ा

मात्रा १६, विभाग ४, ताल १-५-१३ पर, खाली ६ पर।

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ठेका	धा	तिरकिट	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	तिरकिट	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं
ताल चिह्न	×				२				०				३			

अथवा

धा तिरकिट धिं नधि	ना ना तिं तिं	ता तिरकिट धिं नधि	ना ना धिं धिं
×	२	०	३

तालों की दुगुनादि लिखना

किसी ताल के ठेके को यदि दुगुन लय में लिखना हो, तो पहले उसको पूरा-पूरा दो बार लिख लेना चाहिए अर्थात् उसके दो आवर्तन लिख लेने चाहिए। फिर कोष्ठक की सहायता से दो-दो मात्राओं को एक-एक मात्रा में कर देना चाहिए। बाद में मात्राएँ गिन कर विभाग, ताली, खाली के चिह्न लगा देने चाहिए। उदाहरणार्थ झप ताल की दुगुन इस प्रकार लिखी जायेगी :—

धीना धीधी	ना तीना धी धीना	धी ना धी धी	नाती नाधी धीना
×	२	०	३

इस प्रकार झपताल के दो आवर्तनों को दुगुनी लय में सम से सम तक बोलने से उसकी दुगुन होती है। तीवरा ताल की दुगुन इस प्रकार लिखी जाएगी :—

धा दिं ता तिट कत गदि	गन धा दिं ता	तिट कत गदि गन
×	२	३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिट, कत, गदि और गन चारों एक-एक मात्रा के हैं अत दुगुन में तिट और कत दोनों को एक मात्रा में कहा जायेगा और गदि, गन को एक में।

इसी प्रकार किसी ताल की तिगुन लिखने के लिए उसको तीन बार लिखकर, तीन-तीन मात्राओं को एक-एक में कर देते हैं और फिर विभाग बनाकर ताल-चिह्न लगाते हैं, जैसे झपताल और तीवरा की तिगुन इस प्रकार लिखी जाएगी :

झपताल की तिगुन

धीना धी	धीना ती	ना धी	धीना	धीना	धीधीना
×		२			
तीना धी	धीना धी	ना धी	धीना	ती ना	धीधीना
०		३			

तीवरा की तिगुन

धा दिं ता	तिट कत गदि	गन धा दिं	ता तिट कत	गदि गन धा
×			२	
दिं ता तिट	कत गदि गन			
३				

चौगुन लिखने में ताल का ठेका चार-चार लिखकर चार-चार मात्राओं को एक-एक मात्रा में लिखा जाता है। झपताल की चौगुन इस प्रकार लिखेंगे :—

झपताल की चौगुन

धीना धी धी	ना तीना धी	धीना धीना	धीधीना	तीना धीधीना
×		२		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

| धीना धीधी ना तीना धी | धी ना धी ना धी धी ना तीना धी धीना |
| ० | ३

तीवरा की चौगुन

| धा दिं ता तिट कत गदि गन धादिंता तिट कत | गदि गन धा दिं
×   २

ता तिट कत गदि | गन धा दिं ता तिट कत गदि गन
                     ३

डेढ़गुन या आड़ लिखने के लिए पहले प्रत्येक मात्रा के आगे एक-एक अवग्रह जोड़ कर उसके दो-दो भाग बनाये जाते हैं जैसे धी का धी ऽ और ना का ना ऽ अथवा तिट का ति ट अलग-अलग लिख दिया जाता है। इस प्रकार संपूर्ण ताल को तीन बार लिखकर तीन-तीन विभागों को एक-एक मात्रा में लिखते हैं। झपताल की आड़ इस प्रकार लिखी जाएगी :—

झपताल की आड़

| धी ऽ ना ऽ धी ऽ | धी ऽ ना ऽ ती ऽ ना ऽ धी | ऽ धी ऽ ना ऽ धी
×   २   ०

ऽ ना ऽ धी ऽ धी ऽ ना ऽ | ती ऽ ना ऽ धी ऽ | धी ऽ ना ऽ धी ऽ |
३   ×   २

ना ऽ धी | ऽ धी ऽ ना ऽ ती | ऽ ना ऽ धी ऽ धी ऽ ना ऽ |
         ०   ३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीय अध्याय

गीत

चित्त को प्रसन्न करने वाले स्वर समुदाय को शास्त्र में गीत कहा गया है, जिसके दो भेद होते हैं, गांधर्व और गान। गांधर्व उस संगीत को कहते थे जिसका गायन गंधर्व लोग करते थे और जिसका ध्येय मोक्ष प्राप्ति था, गांधर्व गीत अपौरुषेय और शब्दप्रधान था। गांधर्व को ही मार्गी संगीत भी कहते थे क्योंकि वह मोक्ष का मार्ग दिखाने वाला होता था।

गान उस संगीत को कहते थे जिसे संगीत-विद्वान विभिन्न देशों की रुचि के अनुकूल देशी रागादि में बाँधते थे और जिसका ध्येय लोकरंजन था। गान का ही दूसरा नाम देशी संगीत है। गांधर्व अथवा मार्गी संगीत आज प्रचलित नहीं। केवल देशी संगीत का व्यवहार है, जो परिवर्तन शील है। देशी संगीत, रुचि भेद के कारण, विभिन्न देशों में भिन्न होता है और प्रत्येक देश का भी देशी संगीत समयानुसार बदलता रहता है क्योंकि जनता की रुचि परिवर्तनशील है।

गान के भी दो रूप सदा से रहे हैं। एक निबद्धगान और दूसरा अनिबद्धगान। निबद्धगान वह है जो ताल में बँधा हो। अनि-बद्धगान वह है जो ताल में न बंधा हो। अनिबद्धगान के प्रकार प्राचीन काल में अनेक प्रकार के आलाप थे जैसे (अ) रागालाप, (ब) रूपकालाप, (स) आलप्तिगान और (द) स्वस्थान नियमों का आलाप। रागालाप उस आलाप को कहते थे जिसमें राग के दस लक्षण, ग्रह, अंश, मंद्र, तार, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षाड़वत्व और ओड़वत्व दिखाये जाते थे। रूपकालाप में रागालाप के लक्षणों के साथ, गीतों के विभिन्न भागों की भाँति स्थायी, अंतरा, संचारी, आभोग आदि बनाकर आलाप होता था। अर्थात्, यदि हम किसी ध्रुपद का गायन शब्द और ताल को छोड़कर करेंगे, तो वह रूपकालाप हो जाएगा। आलप्तिगान में रागालाप के दस लक्षणों के अतिरिक्त आविर्भाव और तिरोभाव भी दिखाया जाता था, जिनका स्पष्टीकरण पहले किया जा चुका है। स्वस्थान नियम के आलाप में चार मुख्य स्वस्थान अथवा स्वरक्षेत्र निश्चित कर दिए जाते थे जिनमें बारी-बारी आलाप करते हुए आगे बढ़ा जाता था। इन स्वस्थानों का विस्तृत वर्णन अगले भाग में होगा।

निबद्धगान के प्राचीन प्रकारों में ध्रुपद आदि के स्थान पर प्रबंध, वस्तु, रूपक आदि गीत प्रचलित थे। जैसे आधुनिक ध्रुपदों में विभिन्न विभाग स्थायी, अंतरा आदि होते हैं, उसी प्रकार प्राचीन प्रबंधों के विभिन्न विभागों को धातु कहते थे, जिनके नाम उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव, अंतरा और आभोग हैं।

आधुनिक निबद्ध गान

प्राचीन काल के प्रबंध आदि गीतों के स्थान पर आज ध्रुपद, ख्याल आदि निबद्धगान प्रचलित हैं। ध्रुपदों के अधिकतर चार अवयव अथवा भाग होते हैं—स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग।

किसी गीत के पहले भाग को स्थायी कहते हैं क्योंकि गायक-वादक बार-बार लौटकर उसी भाग पर आया करता है। स्थायी अधिकतर मंद्र और मध्य सप्तकों में गाई-बजाई जाती है। कभी-कभी तार षड्ज अथवा तार ऋषभ तक भी चली जाती है परन्तु ऐसा केवल उत्तर-रागों में होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थायी के वाद गाया जाने वाला, गीत का दूसरा भाग अंतरा कहलाता है। अंतरा बहुधा गांधार, मध्यम अथवा पंचम से प्रारंभ होकर तार षड्ज पर मिलता है और वाद में तार सप्तक के गांधार, मध्यम अथवा कभी-कभी पंचम स्वर तक जाकर फिर मध्य सप्तक में लौट आता है।

गीत के तीसरे भाग को, जो अंतरे के बाद गायाजाता है, संचारी कहते हैं। संचारी में तार सप्तक में अधिक नहीं जाया जाता परंतु मंद्र और मध्य सप्तक में विशेष विस्तार गमक मींड आदि सहित किया जाता है।

गीव के अंतिम चौथे भाग को आभोग कहते हैं, जो मुख्यतः अंतरे की भाँति होता है। इसमें तार सप्तक में जितना ऊँचा जाना चाहें, जा सकते हैं।

ध्रुपदों को छोड़कर अन्य किसी भी प्रकार के गीतों में संचारी और आभोग भाग नहीं होते। आज तो अनेक ध्रुपदों में भी केवल दो भाग स्थायी ओर अंतरा ही पाये जाते हैं।

आधुनिक संगीत में गीतों के निम्नलिखित मुख्य प्रकार प्रचलित हैं:—ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना, चतुरँग, लक्षणगीव, सरगम (स्वरमालिका), भजन, गीव, गजल और दादरा। इन गीतों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है:—

ध्रुपद

ध्रुपद उत्तर भारत का एक प्राचीन गायन है, जिसमें गंभीरता की विशेषता और भाषा की प्रौढ़ता होती है। इसी से ध्रुपद एक शब्द प्रधान मर्दाना गीत माना जावा है। उसके गायन में गले और फेफड़ों पर पर्याप्त जोर लगाना पड़ता है। ध्रुपद गायन के आविष्कार के वारे में अभी तक कोई निर्णय नहीं हो सका है। कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्वानों के अनुसार ध्रुपद की रचना सर्व प्रथम तेरहवीं शताब्दी में शार्ङ्ग देव के समय में हुई थी। कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि ध्रुपद का आविष्कार पन्द्रहवीं शताब्दी में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने किया। किन्तु इतना हम निस्संदेह कह सकते हैं कि चाहे ध्रुपद गायन राजामान से पूर्व ही प्रारंभ हो चुका हो, पर उसका विशेष प्रचलन राजा मान के द्वारा ही हुआ। फिर, अकबर के समय में तो उसके दरबार के सभी गायकों ने अनेक ध्रुपद बनाये। उसके दरबार में प्रसिद्ध ध्रुपदिये तानसेन थे जिनको आज भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ गायक माना जाता है। तानसेन, वृन्दावन के हरिदास स्वामी डागुर के शिष्य थे। आज भी हरिदास, तानसेन तथा अकबर के अन्य दरबारी गायक नायक गोपाल, बैजू, चिंतामणि मिश्र आदि के बनाये हुए ध्रुपद मिलते हैं।

ध्रुपद अधिकतर हिंदी व्रजभाषा में होते हैं और इनमें मुख्य तथा तीन रस वीर, शांत और शृंगार प्रधान होते हैं। ध्रुपदों को चारताल, सूलताल, तीवरा और ब्रह्म आदि तालों में गाया जाता है और वास्तव में पखावज पर ये ताल बजाये जाते हैं। किन्तु आजकल ध्रुपदों के साथ तबला भी बजने लगा है, अतः तबले पर भी ये ताल बजाये जाने लगे हैं। ध्रुपद के गीतों में अधिकतर चार भाग अथवा अवयव होते हैं :— स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग। कुछ ध्रुपद-गीतों में केवल स्थायी और अंतरा, दो ही भाग पाये जाते हैं। ध्रुपद-गायन में ख्यालों की भाँति तान-पलटे आदि नहीं होते। उसमें गमक का प्रयोग और दुगुन, तिगुन, चौगुन और आड़ आदि लयकारियाँ दिखाई जाती हैं। इन्हीं लयकारियों में गीत के शब्दों का अधिक विस्तार न करते हुए बोलतानें भी कभी-कभी ली जाती हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीन ध्रुपद गायन में दुगुन आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी नहीं होती थी और उनके अनुसार ये सब लयकारियाँ धमार नामक गीत में दिखाई जाती थीं। परन्तु आजकल तो ध्रुपदों में भी इनका प्रयोग होता है। ध्रुपद-गायन आरंभ करने के पूर्व नोम् तोम का आलाप भी किया जाता है।

ध्रुपद गायन प्रचलित हुए लगभग पाँच सौ वर्ष हो गए किन्तु इधर लगभग डेढ़ सौ वर्षों से ख्याल गायन का महत्व अधिक बढ जाने से, ध्रुपद गायन का प्रचार बहुत कम हो गया है, यद्यपि उच्चगायन समाज में उसके प्रति श्रद्धा अवश्य पाई जाती है। इधर, देश में स्वतंत्र अध्ययन का दृष्टि-कोण जाग्रत होने से, ध्रुपद गायन के प्रचार की आशा फिर से हो रही है।

प्राचीन काल में ध्रुपद गाने वालों को कलावंत कहा जाता था। इन कलावंतों की विभिन्न वाणियाँ हुआ करती थीं। जैसे, खंडार, नोहार, डागुर और गोबर हार। ये वाणियाँ वास्तव में गायन की विभिन्न प्रकार की रीति थीं, जो पूर्वकाल में गीतियों के नाम से प्रसिद्ध थीं। शाङ्गदेव ने अपने ग्रंथ संगीत रत्नाकर में पाँच गीतियों का वर्णन किया है, शुद्धा, भिन्ना, वेसरा, गौड़ी और साधारणी। संभवतः इन्हीं गीतियों के आधार पर बाद में चलकर उपरोक्त चार वाणियाँ बन गईं।

धमार

धमार ताल में गाया जाने वाला होली संबंधी पदों का गीत धमार अथवा होरी कहलाता है। इस गीत में अधिकत्तर राधा-कृष्ण अथवा गोपियों की फाल्गुन महीने की लीलाओं का वर्णन होता है। यह धमार अथवा होरी गीत, ध्रुपदियों द्वारा ही गाया जाता है। धमार में ध्रुपद की अपेक्षा कम गंभीरता होती है और शब्द रचना भी उतनी प्रौढ़ नहीं होती। धमार में दुगुन, तिगुन,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौगुन, आड़, कुआड़ आदि का प्रदर्शन बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। ध्रुपद की भाँति इसमें भी कभी-कभी गमक-युक्त बोलतानें ली जाती हैं। होली संबंधी गीतों को जब ख़यालिये ख़याल अंग से गाते हैं, तब वे तबले के दीपचंदी ताल के साथ गाते हैं और उसमें ठुमरी और द्रुत ख़यालों की भाँति तानें तथा बोल-तनें लेते हैं। इस दीपचंदी में गाई जाने वाली होली को केवल "होली का गीत" कहना ही उपयुक्त है, उसे "धमार" अथवा "होरी" नहीं कहा जाता।

ख़्याल

राग के नियमों का पालन करते हुए गायक अपनी इच्छा से विविध आलाप-तानों द्वारा विस्तार करके जो गीत तबले के त्रिताल, एकताल, झुमरा आदि तालों के साथ गाता है, उसे ख़्याल कहते हैं। ख़याल फ़ारसी भाषा का एक शब्द है जिसका भाव है, "विचार" अथवा "कल्पना"। ख़्याल के गीत छोटे होते हैं और उनके केवल दो भाग स्थायी और अंतरा होते हैं। ख़याल- गायन में एक एक शब्द का अनेक प्रकार से विस्तार किया जाता है अतः वह ध्रुपद की भाँति शब्द-प्रधान गायन नहीं है। एक पंक्ति की स्थायी से भी कभी-कभी ख़याल-गायन का कार्य चल जाता है। तानें भी विविध प्रकार की प्रयुक्त होती हैं जिनसे स्वर-वैचित्र्य तथा चमत्कार उत्पन्न होता है। ख़याल गायन में ध्रुपद की अपेक्षा गंभीरता और कुछ शुद्धता भी कम मानी गई है। क्योंकि स्वेच्छा से विस्तार करते समय गायक कभी-कभी रंजकता और वैचित्र्य बढ़ाने के लिए राग को छिपा कर तिरोभाव दिखाता है और फिर आविर्भाव करता है। ख़यालों में शृङ्गार-रस का प्रयोग अधिक होता है।

ख़्याल दो प्रकार के होते हैं, (१) विलम्बित ख़्याल (बड़े ख़्याल) और (२) द्रुत ख़्याल (छोटे ख़्याल)। विलम्बित ख़्यालों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की लय विलम्बित होती है और वे तिलवाड़ा (विलम्बित तीन-ताल), विलम्बित एकताल, झुमरा अथवा आड़ाचारताल आदि धीमीलय की तालों में गाये जाते हैं। छोटे ख्यालों की लय मध्य अथवा द्रुत होती है और अधिकतर त्रिताल अथवा द्रुत एक-ताल में गाये जाते हैं। कभी-कभी मध्य अथवा द्रुत लय के झपताल में भी छोटे ख्याल गाये जाते हैं।

बड़े ख्यालों का प्रचार सबसे पहिले १५ वीं शताब्दी में जौनपुर के सुलतान हुसैन शर्की द्वारा हुआ। बाद में मुग़ल बादशाह मोहम्मदशाह "रंगीले" के दरबार के प्रसिद्ध गवैये सदारङ्ग (असली नाम न्यामत खाँ) और अदारङ्ग ने सैकड़ों ख्याल बनाकर ख्याल गायकी का आदर और प्रचार बढ़ाया। कहते हैं कि मोहम्मदशाह स्वयं भी ख्याल बनाते थे। सदारङ्ग और अदारङ्ग स्वयं केवल ध्रुपद गाते थे, ख्याल नहीं, परन्तु ख्यालों की रचना अवश्य करते थे। इससे पता चलता है कि उस समय ध्रुपद-गायन के सामने ख्याल-गायन निम्नकोटि का समझा जाता था। आज अधिकांश ख्याल, जो प्रचलित हैं, वे सदारङ्ग और अदारङ्ग के ही है। इनके अतिरिक्त इन्हीं के शिष्यानुशिष्य तथा कुछ अन्य गायक जैसे मनरङ्ग, हररङ्ग, रसरङ्ग आदि के भी रचे हुए ख्याल मिलते हैं। ग्वालियर के हद्दू खाँ, हस्सू खाँ, नत्थू खाँ और उनके एक पूर्वज नथ्थनपीरबख्श भी अपनी गुरुपरम्परा सदारङ्ग, अदारङ्ग तक ले जाते थे और रामपुर के वज़ीर खाँ भी सदारङ्ग के ही वंशज थे। रामपुर में तानसेन के भी एक वंशज महम्मदअली खाँ थे। दोनों ध्रुपद गाते थे। वास्तव में सदारङ्ग, अदारङ्ग आदि ने अपने वंश में तो ध्रुपद-गायन जारी रक्खा पर अन्य शिष्यों को ख्याल-गायन सिखाया।

छोटे ख्यालों का आविष्कार क़व्वाली के आधार पर हज़रत अमीर खुसरो ने १४वीं शताब्दी में किया। छोटे ख्याल साधा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ख्यालः त्रिताल अथवा द्रुत एकताल में गाये जाते हैं। इनकी गति चपल होती है और इनमें पहले छोटी-छोटी तानों, फिर अन्य प्रकार की तानों और बोलतानों का प्रयोग होता है। लयकारी और तबले के साथ लड़न्त भी छोटे ख्यालों में प्रायः देखने में आती है।

ख्याल की गायकी में गीत के पूर्व नोम् तोम् अथवा आकार का विस्तृत आलाप शोभा नहीं देता क्योंकि उसके भीतर स्वयं आलाप-तान के विस्तार का पूर्ण अवसर मिलता है। ख्यालगायन के अन्तर्गत बोलों की सहायता लेते हुए और आकार में भी विभिन्न प्रकार से विस्तार किया जाता है अथवा विभिन्न प्रकार की तानें प्रयुक्त होती हैं। इनमें से मुख्य प्रयोग ये हैं:—आलाप-बढ़त, बहलावा, बराबरी की तान, तान-बढ़त, फिरत, बोलतान, गमक तान, सरगम तान इत्यादि। विलम्बित लय में एक एक स्वर का अनेक प्रकार से विस्तार करते हुए आगे बढ़ने को आलाप-बढ़त कहते हैं। यह आकार में भी होता है और गीत के शब्दों की सहायता से भी। आलाप के ढङ्ग पर ली गई तानों को, जिनमें लय न तो बहुत धीमी होती है और न बराबरी की, बहलावा कहते हैं। बहलावे में राग के सभी विशेष स्वरों को बहलाते हुए आगे बढ़ते हैं। आलाप-बढ़त के बाद की सीढ़ी बहलावा है और बहलावे के बाद बराबरी कीतानें ली जाती हैं जो लय के साथ चलती हैं। पहले ठाह, फिर दुगुन, इस प्रकार इन तानों की लय बढ़ाते जाते हैं, पर लय छोड़ते नहीं। जिस प्रकार आलाप की बढ़त करते हैं, उसी प्रकार तेज लय में एक-एक दो-दो स्वर नए जोड़ते हुए तान लेकर आगे बढ़ते जाने से तान-बढ़त होती है। तानों की बढ़त लय में भी हो सकती है और उससे अलग भी, किन्तु बहलावे की भाँति उसमें बीच-बीच में स्वरों पर अधिक विश्राम नहीं होता और न बहलावे की भाँति उसमें आलाप का नमूना ही रहता है। जब ये बढ़त की तानें लय में ली जाती हैं, तब ये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बराबरी की तानों का एक प्रकार बन जाती हैं। अन्तर केवल यह होता है कि बराबरी की तानों की लय बहुत अधिक नहीं बढ़ाई जाती, ठाह और दून तक ही प्रायः जाते हैं और यदि ख्याल की लय स्वयं बहुत विलम्बित होती है तो चौगुन, अठगुन में भी बराबरी की तानें ली जाती हैं। किन्तु बढ़त की तानों को इच्छानुसार द्रुत बनाया जा सकता है, केवल "बढ़ाने" का भाव स्पष्ट रहना चाहिए। बढ़त की तानों के उपरांत गायक फिरत की तानें लेते हैं, जिनमें तय्यारी के साथ चाहे जहाँ इच्छा हो, वहाँ गले को फिराया जाता है और तानों की लय भी द्रुत रहती है। ये तानें भी बहुधा लय छोड़कर तेज लय में गाई जाती हैं। हृदय पर जोर लगाकर गंभीरतापूर्वक उच्चारण करके स्वरों को निकालने से गमक की तान उत्पन्न होती है। गमक की तानों का प्रयोग बीच-बीच में करने से श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, किन्तु प्रायः ये तानें गायन के अंतिम अंश में ही ली जाती हैं। गीत के शब्दों के साथ ली गई सभी तानें, बोलतानें कहलाती हैं, जिनमें शब्दों को उपयुक्त स्वरों में जोड़ना एक कठिन कार्य है। आलाप के ढंग पर प्रयुक्त होने पर इन्हीं बोलतानों को बोल-आलाप कहते हैं और तेज़ लय में ये केवल बोलतानें कहलाती हैं। छोटे ख़यालों में द्रुत लय में ठेके के साथ-साथ बोलतानें लय से लड़ती हुई जब चलती हैं, तब उन्हें "बोल बनाना" भी कहते हैं। किन्तु यह प्रयोग वास्तव में ठुमरी गायन का है, जिसमें एक-एक शब्द का भाव अनेक स्वरसमुदायों द्वारा दिखाया जाता है। ठुमरी में बोल बनाने का ही चमत्कार है।

छोटे ख़यालों में स्वरों को बोलते हुए जो तानें ली जाती हैं, उन्हें **सरगम तान** कहते हैं। कभी-कभी गायक बड़े ख़यालों में मध्यलय की सरगम-तानें गमक अथवा मींड युक्त बनाकर लेते हैं।

ध्रुपद-गायन में जिस प्रकार गमक और मींड का विशेष महत्त्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता है उसी प्रकार ख़याल-गायन में कणों और तानों का विशेष प्रयोग होता है। इस विषय पर अधिक प्रकाश दूसरे भाग में डाला जायगा।

तानों का एक साधारण वर्गीकरण और भी किया गया है जिसके अनुसार उनके तीन भेद माने गये हैं :— (१) एक तो शुद्ध अथवा सरल तानें जो चाल में सीधी और सरल हों। (२) दूसरी कूट तानें जो टेढ़ी मेढ़ी चाल से चलती हों और (३) तीसरी मिश्र तानें जिनमें शुद्ध और कूट तानों का मिश्रण हो। एक प्रकर अलंकारिक तानों का भी होता है जिसमें तानें अलंकार की भाँति आरोह अथवा अवरोह करती हैं।

टप्पा

टप्पा भी गीतों का एक प्रकार है—जो अधिकतर पंजाबी भाषा में होता है और जिसमें बीच बीच में तानों के छोटे-छोटे टुकड़े बार बार प्रयुक्त होते हैं। टप्पा के गीत के शब्द थोड़े होते हैं। उसके केवल दो भाग, अस्थायी और अन्तरा होते हैं। टप्पा का आविष्कार मोहम्मदशाह के समय में गुलाम नबी शोरी (शोरी मियाँ) ने किया था। टप्पा विशेषकर पंजाब और बनारस में अधिक प्रचलित है। बङ्गाल में भी बँगला भाषा के सुन्दर टप्पा मिलते हैं। टप्पा अधिकतर शृङ्गार रस का गीत माना जाता है, उसकी गति चपल होती है और उसके सफल गायन के लिए गले की बहुत अधिक तय्यारी चाहिए, क्योंकि उसमें अलङ्कारिक तथा दानेदार तानों का बाहुल्य होता है। तानों की तय्यारी के लिए टप्पा सीखना आवश्यक एवं लाभप्रद सिद्ध होता है। टप्पा भी साधारणतया छोटे ख्याल के ठेकों पर ही गा दिया जाता है, यद्यपि उसके लिए एक विशेष प्रकार का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"टप्पा ताल" भी बना है जिसके अनेक रूप मिलते हैं। एक रूप इस प्रकार है :—

टप्पा ताल (मात्रा १६

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	धिं	ऽत	धिं	धा	धिं	ऽत	धिं	ता	कत्	ऽक	ऽत्	ना	धिं	ऽत	धिं
×				२				०				३			

टप्पा प्रायः खमाज, काफ़ी, पीलू, भैरवी आदि रागों में गाया जाता है, जिनमें ठुमरी गाई जाती है।

ठुमरी

ठुमरी शृंगार रस का एक भाव-प्रधान गीत है, जिसमें शब्द थोड़े होते हैं किन्तु उन्हीं का भाव अत्यन्त विस्तार के साथ अनेक ढंग से दर्शाया जाता है। ठुमरी भी टप्पे की भाँति एक क्षुद्र प्रकृति का गीत है किन्तु उसका गायन सरल नहीं है क्योंकि उसमें अनेक प्रकार के खटके, मुरकियाँ आदि प्रयुक्त होती हैं जिन्हें निकालना प्रायः ख्याल-गायकों के लिए कठिन हो जाता है। टप्पे की तरह ठुमरी की गति चपल नहीं होती क्योंकि ठुमरी में अलंकारिक अथवा दाने दार तानें नहीं ली जातीं। ठुमरी में शब्दों का दिखाना ही मुख्य कार्य है जो सहृदय और सुन्दर कंठ वाला व्यक्ति ही सफलतापूर्वक कर सकता है। जिन रागों में टप्पे गाये जाते हैं, उन्हीं में ठुमरियाँ भी गाई जाती हैं, जैसे भैरवी पीलू, काफ़ी, खमाज, देश, झिंझोटी आदि। ठुमरी अधिकतर दीप चन्दी (अथवा चाँचर = १४ मात्रा) में गाई जाती है परन्तु आजकल प्रायः १६ मात्रा की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दीपचन्दी में भी ठुमरी गाई जाती है। १६ मात्रा की दीपचन्दी को "जत ताल" के नाम से पुकारते हैं :—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	ऽ	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ	ता	ऽ	तिं	ऽ	धा	धा	धिं	ऽ
×				२				०				३			

टप्पा ताल की भाँति ठुमरी गाने के लिए भी एक पृथक् "पंजाबी त्रिताल" का भी प्रचलन है, यद्यपि उसकी अपेक्षा उपरोक्त जत अथवा चाँचर का अधिक प्रयोग हो रहा है। यह पञ्जाबी त्रिताल इस प्रकार है :—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	ऽधी	ऽग	धा	धागि	नधी	ऽग	धा	ता	ऽती	ऽक	ता	धागि	नधी	ऽग	धा
×				२				०				३			

ठुमरी में बहुधा राग की शुद्धता का ध्यान कम हो जाता है, सरसता उत्पन्न करने का ध्यान अधिक रहता है। ठुमरी गायन के मध्य में और अन्त में भी प्रायः कहरवा ताल की लय पकड़कर बोल बनाये जाते हैं और कुछ देर के बाद फिर पूर्व ठेके में आ जाते हैं। इस प्रयोग का श्रोताओं पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

ठुमरी गायन सौ वर्ष पूर्व लखनऊ में प्रारम्भ हुआ था, ऐसा अनुमान लगाया जाता है। ठुमरी लखनऊ और बनारस की प्रसिद्ध है। संयुक्त प्रांत के बाहर ठुमरी का प्रचार होने पर अन्य प्रांतों की विशेषताएँ उसमें आईं और इस प्रकार महाराष्ट्र की ठुमरी और पञ्जाब की ठुमरी एक विशेष और कुछ पृथक् ढङ्ग की बन गई हैं। संयुक्त प्रांत के ठुमरी-विशेषज्ञ, उसमें पञ्जाबी अङ्ग को अच्छा नहीं समझते। इस विषय पर अधिक प्रकाश दूसरे भाग में डाला जायगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुरँग

यह गीत चार अंगों से बनता है: (१) ख्याल अथवा गीत के शब्द, (२) तराना अथवा तराने के शब्द ना, दिर, दा, नी, य, ल, त, द, रे आदि, (३) सरगम और (४) त्रिवट अथवा मृदंग के बोल (त्रिवट भी गीत का एक प्रकार माना गया है, जिसमें पखावज के बोलों को राग-ताल-बद्ध कर के गाया जाता है।)

चतुरँग को ख्याल के ढंग पर ही गाते हैं। यह गीत-प्रकार प्राचीन नहीं है।

तराना

त न री ता ना दिर तोम् ओ दा नी य ल ली आदि अक्षरों से युक्त राग-ताल-बद्ध रचना तराना कहलाती है, जिसमें गीत का कोई अर्थ नहीं होता। केवल राग और लयदारी का चमत्कार होता है। तराने सभी रागों में होते हैं और तीनताल, द्रुत एकताल अथवा झपताल आदि में गाये जाते हैं। तरानों की लय प्रायः द्रुत होती है। तरानों के अभ्यास से जिह्वा का पक्का अभ्यास हो जाता है और इसे तय्यारी के साथ गाने के लिए पक्का स्वर ज्ञान चाहिए। ख्याल गायक प्रायः अंत में तराने गाते हैं। कभी-कभी तरानों में तबला-पखावज के भी बोल आ जाते हैं। कुछ तराने विलंबित लय के ख्यालों के रूप में भी मिले हैं। बहादुर हुसेन खाँ, तानरस खाँ और नथ्थू खाँ आदि के तराने बहुत मिलते हैं।

लक्षणगीत

जिस गीत के शब्दों में राग के मुख्य लक्षण, स्वर, जाति, वादी संवादी, समय, वर्ज्य स्वर आदि का वर्णन होता है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह लक्षणगीत कहलाता है। लक्षणगीत में स्थायी और अंतरा दो भाग होते हैं और वह ख्याल के ढंग पर गाया जाता है। कुछ लक्षणगीत ध्रुपद-अंग के भी होते हैं। प्रत्येक राग के लक्षणगीत हो सकते हैं और वे किसी भी ताल में गाये जा सकते हैं। लक्षणगीतों का मुख्य उद्देश्य रागों के लक्षणों पर प्रकाश डालना है।

स्वरमालिका

राग में लगने वाले स्वरों की तालबद्ध रचना को स्वरमालिका, सुरावर्त अथवा सरगम कहते हैं। यह विभिन्न तालों में होती है। इस रचना से विद्यार्थियों को प्रारंभिक स्वर-राग ज्ञान कराने में सहायता मिलती है। इसके दो भाग, स्थायी और अंतरा होते हैं।

गज़ल

गज़ल उर्दू अथवा फ़ारसी भाषा का एक शृंगार रस का गीत है जो अधिकतर दीपचंदी और पश्तु ताल (रूपक के सदृश ताल) में गाया जाता है और जिसमें शब्दों तथा उनके अर्थों की प्रधानता है। गज़लों में लौकिक अथवा पारलौकिक प्रेम-व्यवहारों का वर्णन होता है। शब्द-रचना में आकर्षण होता है और सभी अंतरे एक भाँति गाये जाते हैं। इस अर्थप्रधान गीत को शास्त्रीय संगीत में अत्यंत गौण स्थान दिया गया है। जिन रागों में टप्पे और ठुमरी गाई जाती हैं, उन्हीं में अधिकतर गज़लें भी गाई जाती हैं।

भजन और गीत

जिस प्रकार उर्दू भाषा में शब्द और अर्थ-प्रधान गीत गज़ल होता है, उसी प्रकार हिन्दी में भजन और गीत, ये दो अर्थ प्रधान गीत हैं। ईश्वर-स्तुति अथवा ईश्वर-गुणानुवाद सम्बन्धी सभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद भजन कहलाते हैं जिन्हें भावानुकूल रागों में बाँध कर गाया जाता है। भजन अधिकतर कहरवा, दादरा, धुमाली, रूपक अथवा तीन ताल में गाये जाते हैं। भजनों के लिए अधिक उपयुक्त राग काफ़ी, भैरवी, खमाज, पीलू आदि हैं। परन्तु आजकल किसी विशेष राग में न बाँधकर भजनों को उनके उपयुक्त स्वर-समुदायों में बैठालकर भी गाने लगे हैं। अनेक बार एक से अधिक रागों का मिश्रण भी भजनों में देखने में आता है। भजन-गायन में भक्तिरस का विशेष ध्यान रक्खा जाता है, अतः उसमें अलाप-तान अधिक नहीं होता। अधिकतर तो उसमें आलाप-तान होता ही नहीं, केवल बोलतानों की सहायता से भजन के भावों को अधिक स्पष्ट कर दिया जाता है। कुछ गायक भजनों के पद पूर्ण ख्याल गायकी में भी गाते हैं परन्तु वे भी सरसता का ध्यान रखने की चेष्टा अवश्य करते हैं।

ईश्वर-स्तुति अथवा ईश्वर की लीलाओं तथा गुणों से संबंधित पदों के अतिरिक्त जितनी भी अन्य साहित्यिक कविताएँ हिन्दी में होती हैं, उन्हें उनके भावानुकूल स्वरों में बाँधकर जो गाने गाये जाते हैं, उन्हें संगीत-क्षेत्र में गीत कहते हैं। यद्यपि आजकल अधिकांश प्रचलित गीत प्रेम संबंधी हैं किन्तु अन्य विषय के भी गीत हैं और गाये भी जाते हैं। गीतों के गायन की मुख्य विशेषता यह है कि उनकी धुन ऐसी होनी चाहिए जो उस गीत का पूर्ण भाव व्यक्त कर दे अर्थात् गीतों में शब्दों और स्वरों का पूर्ण साम्य स्थापित होना चाहिए। गीतों के भावों के अनुकूल ही स्वर और ताल चुने जाने चाहिए। गीतों में किसी प्रकार का विस्तार, तान, आलाप आदि नहीं होता।

भजनों और गीतों में मींड, खटके, मुरकी, गमक, कण आदि अनेक आभूषणों का यथा स्थान प्रयोग होता है। इन्हें एक प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का भाव-संगीत कहा जा सकता है, जिसका जीवन के साथ घनिष्ट संबंध है और संगीत के इस प्रयोग पर अभी पर्य्याप्त ध्यान देना वांछनीय है। रेडियो द्वारा भजन-गीतों का यथेष्ट प्रचार हो रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi